राम-चर्चा

[श्री रामचन्द्रजी की अमर कहानी]

लेखक

प्रेमचन्द

सरस्वती-प्रेस,

बनारस कैन्ट

अनुक्रमणिका

बाल-कांड

अयोध्या-कांड

वन-कांड

किष्किन्धा-कांड

सुन्दर-कांड

लंका-कांड

उत्तर-कांड

बालकांड

जन्म

प्यारे बच्चो! तुमने विजय-दशमी का मेला तो देखा ही होगा। कहीं-कहीं इसे रामलीला का मेला भी कहते हैं। इस मेले में तुमने मिट्टी या पीतल के बन्दरों और भालुओं के-से चेहरे लगाये आदमी देखे होंगे। राम, लक्ष्मण और सीता को सिंहासन पर बैठे देखा होगा और इनके सिंहासन के सामने कुछ फ़ासले पर काग़ज़ और बाँसों का एक बड़ा पुतला देखा होगा। इस पुतले के दस सिर और बीस हाथ देखे होंगे। यह रावण का पुतला है। हज़ारों बरस हुए, राजा रामचंद्र ने लंका में जाकर रावण को मारा था। उसी क़ौमी फ़तह की यादगार में विजय-दशमी का मेला होता है और हर साल रावण का पुतला जलाया जाता है। आज हम तुम्हें उन्हीं राजा रामचंद्र की ज़िंदगी के दिलचस्प हालात सुनाते हैं।

गंगा की उन सहायक नदियों में, जो उत्तर से आकर मिलती हैं, एक सरयू नदी भी है। इसी नदी पर अयोध्या का मशहूर क़स्बा आबाद है। हिंदू लोग आज भी वहाँ तीर्थ करने जाते हैं। आजकल तो अयोध्या एक छोटा-सा क़स्बा है; मगर कई हज़ार साल हुए, वह हिंदुस्तान का सबसे बड़ा शहर था। वह सूर्य-वंशी ख़ान्दान के नामी-गिरामी राजाओं की राजधानी थी। हरिश्चन्द्र-जैसे दानी, रघु-जैसे गरीब-परवर, भगीरथ-जैसे वीर राजा इसी सूर्यवंश में हुए। राजा दशरथ इसी प्रसिद्ध वंश के एक राजा थे। रामचंद्र राजा दशरथ के बेटे थे।

उस ज़माने में अयोध्या नगरी विद्या और कला की केंद्र थी। दूर-दूर के व्यापारी रोज़गार करने आते थे और वहाँ की बनी हुई चीज़ें ख़रीदकर ले जाते थे। शहर में विशाल सड़कें थीं। सड़कों पर हमेशा छिड़काव होता था। दोनों ओर आलीशान महल खड़े थे। हर क़िस्म

की सवारियाँ सड़कों पर दौड़ा करती थीं। अदालतें, मदरसे, औषधालय सब मौजूद थे। यहाँ तक कि नाटक-घर भी बने हुए थे, जहाँ शहर के लोग तमाशा देखने जाते थे। इससे मालूम होता है कि पुराने ज़माने में भी इस देश में नाटकों का रिवाज था। शहर के आसपास बड़े-बड़े बाग़ थे। इन बाग़ों में किसी को फल तोड़ने की मुमानियत न थी। शहर की हिफ़ाज़त के लिए मज़बूत चहारदीवारी बनी हुई थी। अंदर एक क़िला भी था। क़िले के चारों ओर गहरी खाई खोदी गई थी, जिसमें हमेशा पानी लबालब भरा रहता था। क़िले के बुर्जों पर तोपें लगी रहती थीं। शिक्षा इतनी प्रचलित थी कि कोई जाहिल आदमी ढूँढ़ने से भी न मिलता था। लोग बड़े अतिथि का सत्कार करनेवाले, ईमानदार, शांतिप्रेमी, विद्याभ्यासी, धर्म के पाबंद और दिल के साफ़ थे। अदालतों में आजकल की तरह झूठे मुकदमे दायर नहीं किये जाते थे। हर घर में गायें पाली जाती थीं। घी-दूध की इफ़रात थी। खेती में अनाज इतना पैदा होता था कि कोई भूखा न रहने पाता था। किसान खुशहाल थे। उनसे लगान बहुत कम लिया जाता था। डाके और चोरी की वारदातें सुनाई भी न देती थीं। और ताऊन; हैज़ा वगैरह बीमारियों का नाम तक न था। यह सब राजा दशरथ की बरकत थी।

एक रोज़ राजा दशरथ शिकार खेलने गये और घोड़ा दौड़ाते हुए एक नदी के किनारे जा पहुँचे। नदी दरख़्तों की आड़ में थी। वहीं जंगल में अन्धक मुनि नामक एक अन्धा रहता था। उसकी स्त्री भी अंधी थी। उस वक्त उनका नौजवान बेटा श्रवण नदी में पानी भरने गया हुआ था। उसके कलशे के पानी में डूबने की आवाज़ सुनकर राजा ने समझा कि कोई जंगली हाथी नहा रहा है। तुरंत शब्द-वेधी बाण चला दिया। तीर नौजवान के सीने में लगा। तीर का लगना था कि वह ज़ोर से चिल्लाकर गिर पड़ा। राजा घबराकर वहाँ गये तो देखा कि एक नौजवान पड़ा तड़प रहा है। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। बेहद अफ़सोस हुआ। नौजवान ने उनको लज्जित और दुःखित देखकर समझाया—अब रंज करने से क्या फ़ायदा! मेरी मौत शायद इसी

तरह लिखी थी। मेरे माँ-बाप दोनों अंधे हैं। उनकी कुटी वह सामने नज़र आ रही है। मेरी लाश उनके पास पहुँचा देना। यह कहकर वह मर गया।

राजा ने नौजवान की लाश को कंधे पर रखा और अंधे के पास जाकर यह दुःखद समाचार सुनाया। बेचारे दोनों बुड्ढे, तिसपर दोनों आँखों के अंधे, और यही इकलौता बेटा उनकी ज़िंदगी का सहारा था—इसके मरने का समाचार सुनकर फूट-फूटकर रोने लगे। जब आँसू ज़रा थमे तो उन्हें राजा पर गुस्सा आया। उनको खूब जी-भरकर कोसा और यह शाप देकर कि जिस तरह बेटे के शोक में हमारी जान निकल रही है उसी तरह तुम भी बेटे ही के शोक में मरोगे, दोनों मर गये। राजा दशरथ भी रो-धोकर यहाँ से बिदा हुए।

राजा दशरथ के अब तक कोई संतान न थी। संतान ही के लिए उन्होंने तीन शादियाँ की थीं। बड़ी रानी का नाम कौशल्या था, मँझली रानी का सुमित्रा और छोटी रानी का कैकेयी। तीनों रानियाँ भी संतान के लिए तरसती रहती थीं। अंधे का शाप राजा के लिए वरदान हो गया। चाहे बेटे के शोक में मरना ही पड़े, बेटे का मुँह तो देखेंगे। ताज और तख्त का वारिस तो पैदा होगा। इस ख़याल से राजा को बड़ी तसकीन हुई। इसके कुछ ही दिन बाद अपने गुरु वशिष्ठ के मशविरे से राजा ने एक यज्ञ किया। इसमें बहुत से ऋषि-मुनि जमा हुए और सबने राजा को आशीर्वाद दिया। यज्ञ के पूरे होते ही तीनों ही रानियाँ गर्भवती हुईं और नियत समय के बाद तीनों रानियों के चार राजकुमार पैदा हुए। कौशल्या से रामचंद्र हुए, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न और कैकेयी से भरत। सारे राज में मंगल-गीत गाये जाने लगे। प्रजा ने खूब उत्सव मनाया। राजा ने इतना सोना-चाँदी दान किया कि राज में कोई निर्धन न रह गया। उनकी दिली कामना पूर्ण हुई। कहाँ एक बेटे का मुँह देखने को तरसते थे, कहाँ चार-चार बेटे पैदा हो गये। घर गुलज़ार हो गया। ज्योति-हीन आँखें रोशन हो गईं।

चारों लड़कों का लालन-पालन होने लगा। जब वह ज़रा सयाने

हुए तो गुरु बशिष्ठ ने उन्हें शिक्षा देना शुरू किया। चारों लड़के बहुत ही ज़हीन थे, थोड़े ही दिनों में वेद-शास्त्र सब ख़तम कर लिये और रण-विद्या में भी खूब होशियार हो गये। धनुर्विद्या में, भाला चलाने में, कुश्ती में, किसी फ़न में इनका समान न था। मगर उनमें घमण्ड नाम को भी न था। चारों बुज़ुर्गों का अदब करते थे। छोटों को भी वह सख़्त-सुस्त न कहते। उनमें आपस में बड़ी गहरी मुहब्बत थी। एक दूसरे के लिए जान देते थे। चारों ही सुन्दर, स्वस्थ और सुशील थे। उन्हें देखकर हर एक के मुँह से आशीर्वाद निकलता था। सब कहते थे, यह लड़के ख़ानदान का नाम रोशन करेंगे। यों तो चारों में एक-सी मुहब्बत थी, मगर लक्ष्मण को रामचन्द्र से, शत्रुघ्न को भरत से ख़ास प्रेम था। राजा दशरथ मारे खुशी के फूले न समाते थे।

ताड़का और मारीच का वध

एक दिन राजा दशरथ दरबार में बैठे हुए मन्त्रियों से कुछ बात-चीत कर रहे थे कि ऋषि विश्वामित्र पधारे। विश्वामित्र उस समय के बहुत बड़े तपस्वी थे। वह क्षत्रिय होकर भी केवल अपनी आराधना के बल से ब्रह्मर्षि के पद पर पहुँच गये थे। सभी ऋषि उनके सामने आदर से सिर झुकाते थे। मगर ज्ञानी होने पर भी वह किसी हद तक क्रोधी थे। किसी ने उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ काम किया और उन्होंने शाप दिया। इससे सभी राजे-महाराजे उनसे डरते थे; क्योंकि उनके शाप को कोई रद्द न कर सकता था। लड़ाई की विद्या में भी वह अद्वितीय थे। राजा दशरथ ने सिंहासन से उतरकर उनका स्वागत किया और उन्हें अपने सिंहासन पर बिठाकर बोले—आज इस ग़रीब के घर को अपने चरणों से पवित्र करके आपने मुझ पर बड़ा एहसान किया। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये; वह सर आँखों पर बजा लाऊँ।

विश्वामित्र ने आशीर्वाद देकर कहा—महाराज! हम तपस्वियों को राज-दरबार की याद उसी समय आती है, जब हमें कोई तकलीफ़ होती है, या जब हमारे ऊपर कोई अत्याचार करता है। मैं आजकल एक

यज्ञ कर रहा हूँ; किन्तु राक्षस लोग उसे अपवित्र करने की कोशिश करते हैं। वह यज्ञ की वेदी पर रक्त और हड्डियाँ फेंकते हैं। मारीच और सुबाहु दो बड़े ही विद्रोही राक्षस हैं। यह सारा फ़िसाद उन्हीं लोगों का है। मुझमें अपनी तपस्या का इतना बल है कि चाहूँ तो एक शाप देकर उनकी सारी सेना को जलाकर राख कर दूँ; पर यज्ञ करते समय क्रोध को रोकना पड़ता है। इसलिए मैं आपके पास फ़रियाद लेकर आया हूँ। आप राजकुमार रामचन्द्र और लक्ष्मण को मेरे साथ भेज दीजिए, जिससे वह मेरे यज्ञ की रक्षा करें और उन राक्षसों को शिथिल कर दें। दस दिन में हमारा यज्ञ पूरा हो जायगा। राम के सिवा और किसी से यह काम न होगा।

राजा दशरथ बड़ी मुश्किल में पड़ गये। राम का वियोग उन्हें एक क्षण के लिए सह्य न था। यह भय भी हुआ कि लड़के अभी अनुभवी नहीं हैं, डरावने राक्षसों से भला क्या मुक़ाबला कर सकेंगे। डरते हुए बोले—हे पवित्र ऋषि! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; किन्तु इन अल्प-वयस्क लड़कों को राक्षसों के मुक़ाबले में भेजते मुझे भय होता है। उन्हें अभी तक युद्ध-क्षेत्र का अनुभव नहीं है। मैं स्वयं अपनी सारी सेना लेकर आपके यज्ञ की रक्षा करने चलूँगा। लड़कों को साथ भेजने के लिए मुझे विवश न कीजिये।

विश्वामित्र हँसकर बोले—महाराज! आप इन लड़कों को अभी नहीं जानते। इनमें शेरों की-सी हिम्मत और ताकत है। मुझे पूरा विश्वास है कि ये राक्षसों को मार डालेंगे। इनकी तरफ़ से आप निडर रहिये। इनका बाल भी बाँका न होगा।

राजा दशरथ फिर कुछ आपत्ति करना चाहते थे; मगर गुरु वशिष्ठ के समझाने पर राजी हो गये। और दोनों राजकुमारों को बुलाकर ऋषि विश्वामित्र के साथ जाने का आदेश दिया। रामचन्द्र और लक्ष्मण यह आज्ञा पाकर दिल में बहुत खुश हुए। अपनी वीरता को दिखाने का ऐसा अच्छा अवसर इन्हें पहले न मिला था। दोनों ने युद्ध में जाने के कपड़े पहने, हथियार सजाये और अपनी माताओं से आशी-

र्वाद लेने के बाद राजा दशरथ के चरणों पर गिरकर ख़ुशी-ख़ुशी विश्वामित्र के साथ चले। रास्ते में विश्वामित्र ने दोनों भाइयों को एक ऐसा मन्त्र बताया कि जिसको पढ़ने से थकावट पास नहीं आती थी। नये-नये बहुत अद्भुत हथियारों का उपयोग करना सिखाया, जिनके मुक़ाबले में कोई ठहर न सकता था।

कई दिन के बाद तीनों आदमी गंगा को पार करके घने जंगल में जा पहुँचे। विश्वामित्र ने कहा—बेटा! इस जंगल में ताड़का नाम की देवयानी रहती है। वह इस रास्ते से गुज़रनेवाले आदमी को पकड़कर खा डालती है। पहले यहाँ एक अच्छा नगर बसा हुआ था; पर इस देवयानी ने सारे आदमियों को खा डाला। अब वही बसा हुआ नगर घना जंगल है। कोई आदमी भूलकर भी इधर नहीं आता। हम लोगों की आहट पाकर वह देवयानी आती होगी। तुम तुरन्त उसे तीर से मार डालना।

विश्वामित्र अभी यह वाक़या बयान कर ही रहे थे कि हवा में ज़ोर की सनसनाहट हुई और ताड़का मुँह खोले दौड़ती हुई आती दिखाई दी। उसकी सूरत इतनी डरावनी और डील इतना बड़ा था कि कोई कम साहसी आदमी होता तो मारे डर के गिर पड़ता। उसने इन तीनों आदमियों के सामने आकर गरजना और पत्थर फेंकना शुरू किया। विश्वामित्र ने रामचन्द्र को तीर चलाने का इशारा किया। रामचन्द्र एक औरत पर हथियार चलाना नियम के विरुद्ध समझते थे। ताड़का देवयानी थी तो क्या, थी तो औरत। मगर ऋषि का संकेत पाकर उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी। ऐसा तीर चलाया कि वह ताड़का की छाती में चुभ गया। ताड़का ज़ोर से चीख़कर गिर पड़ी और एक क्षण में तड़प-तड़पकर मर गई।

तीनों आदमी फिर आगे चले और कई दिनों के बाद विश्वामित्र के आश्रम में पहुँच गये। था तो यह भी जंगल; पर इसमें अधिकतर ऋषि लोग रहा करते थे। शेर, नीलगाय, हिरन निडर घूमा करते थे। इस तपोभूमि के प्रभाव से शिकार खेलनेवाले भी शिकार क त रफ़ी प्रवृत्त न होते थे।

दूसरे दिन से विश्वामित्र ने यज्ञ करना शुरू किया। राम और लक्ष्मण कमर में तलवार लटकाये, धनुष और बाण हाथ में लिये जंगल के चारों ओर गश्त लगाने लगे। न खाने-पीने की फ़िक्र थी, न सोने-लेटने की। रात-दिन बिना सोये और बिना खाये पहरा देते थे। इस प्रकार पाँच दिन कुशल से बीत गये। मगर छठे दिन क्या देखते हैं कि मारीच और सुबाहु राक्षसों की सेना लिये यज्ञ को अपवित्र करने चले आ रहे हैं। दोनों भाई तुरंत सँभल गये। ज्योंही मारीच सामने आया, रामचन्द्र ने ऐसा तीर मारा कि वह बड़ी दूर जाकर गिर पड़ा। सुबाहु बाकी था। उसे भी एक अग्नि-बाण में ठंडा कर दिया। फिर तो राक्षसी सेना के पैर उखड़ गये। दोनों भाइयों ने दूर तक उनका पीछा किया और कितनों ही को मार डाला। इस प्रकार यज्ञ सुन्दर रीति से पूरा हो गया, किसी प्रकार की रुकावट न हुई। विश्वामित्र ने दोनों भाइयों की खूब प्रशंसा की।

विवाह

राम और लक्ष्मण अभी विश्वामित्र के आश्रम में ही थे कि मिथिला के राजा जनक ने विश्वामित्र को अपनी लड़की सीता के स्वयम्वर में सम्मिलित होने के लिए नैवेद्य भेजा। उस समय में प्रायः विवाह स्वयम्वर की रीति से होते थे, लड़की का पिता एक उत्सव करता था, जिसमें दूर-दूर से आकर लोग सम्मिलित होते थे। उत्सव में साहस या युद्ध के कौशल की परीक्षा होती थी। जो युवक इस परीक्षा में सफल होता था, उसी के गले में कन्या जयमाल डाल देती थी। उसी से उसका विवाह हो जाता था। विश्वामित्र की हार्दिक इच्छा थी कि सीता का विवाह राम से हो जाय। वह यह भी जानते थे कि राम परीक्षा में अवश्य सफल होंगे। इसलिए जब वह मिथिला जाने लगे, तो राम और लक्ष्मण को भी साथ लेते गये। राजा दशरथ से आज्ञा लेने के लिए अयोध्या जाने और वहाँ से मिथिला आने के लिए काफ़ी वक्त न था। मिथिला वहाँ से क़रीब ही थी। इसलिए विश्वामित्र ने सीधे वहाँ जाने का निश्चय किया।

आजकल जिस प्रान्त को हम बिहार कहते हैं, वही उस ज़माने में मिथिला कहलाता था। मिथिला के राजा जनक बड़े विद्वान् और ज्ञानी पुरुष थे, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनसे ज्ञान की शिक्षा लेने आते थे। कई साल पहले मिथिला में बड़ा भारी अकाल पड़ा था। उस वक्त ऋषियों ने मिलकर फ़ैसला किया कि यह काल यज्ञ ही से दूर हो सकता है। इस यज्ञ को पूरा करने की एक शर्त्त वह भी थी कि राजा जनक ख़ुद हल चलायें। राजा जनक को अपनी प्रजा अपने प्राण से भी अधिक प्रिय थी। इसके सिर से इस संकट को दूर करने के लिए उन्होंने इस यज्ञ को शुरू कर दिया। जब वह हल-बैल लेकर खेत में पहुँचे और हल चलाने लगे तो क्या देखते हैं कि फल की नोक से जो ज़मीन खुद गई है उसमें एक चाँद-सी लड़की पड़ी हुई है। राजा के कोई सन्तान न थी; तुरन्त इस लड़की को गोद में उठा लिया और घर लाये। उसका नाम सीता रखा, क्योंकि वह फल की नोक से निकली थी। फल को संस्कृत में सित् कहते हैं। इस ईश्वरीय देन को राजा जनक ने बड़े लाड़ और प्यार से पाला। और अच्छे-अच्छे विद्वानों से शिक्षा दिलवाई। इसी सीता के विवाह पर यह स्वयंवर रचा गया था।

राम-लक्ष्मण और विश्वामित्र सोन, गंगा इत्यादि नदियों को पार करते हुए चौथे दिन मिथिला पहुँचे। सारे शहर के लोग इन राजकुमारों की सुन्दरता और डील-डौल देखकर उन पर मोहित हो गये। सबके मुँह से यही आवाज़ निकलती थी कि सीता के योग्य कोई है तो यही राजकुमार है; जैसी सुन्दर वह है वैसे ही ख़ूबसूरत रामचन्द्र हैं। मगर देखा चाहिये इनसे शिव का धनुष उठता है या नहीं।

राजा जनक को विश्वामित्र के आने के ख़बर हुई तो उन्होंने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। जब उन्हें मालूम हुआ कि वह दोनों नौजवान राजा दशरथ के बेटे हैं, तब उनके दिल में भी यही ख्वाहिश हुई कि काश सीता का ब्याह रामचन्द्र से हो जाता; मगर स्वयंवर की शर्त्त से लाचार थे।

विश्वामित्र ने राजा जनक से पूछा—महाराज, आपने स्वयंवर के लिए कौन-सी परीक्षा चुनी है?

जनक ने उत्तर दिया—भगवन्, क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता। सैकड़ों बरस गुज़र गये, एक बार शिवजी ने मेरे किसी पूर्वज को अपना धनुष दिया था। वह धनुष तब से मेरे घर में रखा हुआ था। एक दिन मैंने सीता से अपनी पूजा की कोठरी को लीप डालने के लिए कहा—उसी कोठरी में वह पुराना धनुष रखा हुआ था। सैकड़ों बरस से कोई उसे उठा न सका था। सीता ने जाकर देखा तो उसके आस-पास बहुत कूड़ा जमा हो गया था। उसने धनुष को उठाकर एक ओर रख दिया, और उसके नीचे की धरती लीपकर फिर उस धनुष को वहीं रख दिया। मैं पूजा करने गया तो धनुष को हटा हुआ देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब मालूम हुआ कि सीता ने उसे उठाकर ज़मीन साफ़ की है, तब मैंने शर्त की कि ऐसी वीर कन्या का विवाह उसी वर से करूँगा, जो धनुष को चढ़ाकर तोड़ देगा। अब देखूँ लड़की के भाग्य में क्या है।

दूसरे दिन स्वयम्वर की तैयारियाँ शुरू हुईं। मैदान में एक बड़ा शामियाना ताना गया। सैकड़ों सूरमा जो अपने बल के घमंड में दूर-दूर से आये हुए थे आ-आकर बैठे। शहर के लाखों स्त्री-पुरुष एकत्रित हुए। शिवजी के धनुष को बहुत से आदमी उठाकर सभा में लाये। जब सब लोग आ गये तो राजा जनक ने खड़े होकर कहा—ऐ भारतवर्ष के वीरो! यह शिवजी का धनुष आप लोगों के सामने रखा हुआ है। जो इसे तोड़ देगा, उसी के गले में सीता जयमाल डालेगी।

यह सुनते ही सूरमाओं और वीरों ने धनुष के पास जा-जाकर जोर लगाना शुरू किया। सभी राजकुमार सीता से विवाह करने का स्वप्न देख रहे थे। कमर कस-कसकर घमंड से ऐंठते-अकड़ते धनुष के पास जाते, और जब वह तिल भर भी न हिलता तो अपमान से गर्दन झुकाये अपना-सा मुँह लिये लौट आते थे। सारी सभा में एक भी ऐसा योद्धा न निकला जो धनुष को उठा सकता, तोड़ने का तो ज़िक्र ही क्या।

राजा जनक ने यह दशा देखी तो उन्हें बड़ा भय हुआ। सभा में खड़े होकर निराशा-सूचक स्वर में बोले—शायद यह वीरभूमि अब

वीरों से खाली हो गई है। जभी तो इतने आदमियों में एक भी ऐसा न निकला जो इस धनुष को तोड़ सकता। यदि मैं ऐसा जानता तो स्वयंवर के लिए यह शर्त्त ही न रखता। ऐसा प्रतीत होता है कि सीता अविवाहित रहेगी। यही इसके भाग्य में है तो मैं क्या कर सकता हूँ। आप लोग अब शौक़ से जा सकते हैं। इस हौसले और ताक़त पर आप लोगों को यहाँ आने की ज़रूरत ही क्या थी ?

लक्ष्मण बड़े जोशीले युवक थे। जनक की यह बातें सुनकर उनसे सहन न हो सका। जोश से बोले—महाराज ! ऐसा अपनी ज़बान से न कहिये। जब तक राजा रघु का वंश कायम है, यह देश वीरों से ख़ाली नहीं हो सकता। मैं डींग नहीं मारता। सच कहता हूँ कि अगर अपने भाई साहब की आज्ञा पाऊँ तो एकदम मैं इस धनुष के पुरज़े-पुरज़े कर दूँ। मेरे भाई साहब चाहें तो इसे एक हाथ से तोड़ सकते हैं। इसकी हक़ीक़त ही क्या है। लक्ष्मण की यह जोशपूर्ण बातें सुनकर सारे सूरमा दंग रह गये। रामचन्द्र छोटे भाई की तबियत से परिचित थे। उनका हाथ पकड़कर खींच लिया और बोले—भाई, यह समय इस तरह की बातें करने का नहीं है। जब तक तुम्हारे बड़े मौजूद हैं, तुम्हें ज़बान खोलना उचित नहीं।

लक्ष्मण बैठ गये तो विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा—बेटा, अब तुम जाकर इस धनुष को तोड़ो, जिसमें राजा जनक को तसकीन हो। रामचन्द्र सीता को पहले ही दिन एक बाग़ में देख चुके थे ? दोनों भाई बाग़ में सैर करने गये थे और सीता देवी की पूजा करने आई थीं। वहीं दोनों की आँखें मिली थीं। उसी वक़्त से रामचन्द्र को सीता से प्रेम हो गया था। वह इसी समय की प्रतीक्षा में थे। विश्वामित्र की आज्ञा पाते ही उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और धनुष की ओर चले। सूरमाओं ने अपना अपमान कम करने के विचार से उन पर आवाज़ें कसना शुरू किया। एक ने कहा, ज़रा सँभले हुए जाइयेगा, ऐसा न हो अपने ही ज़ोर में गिर पड़िये ; दूसरा बोला—इस पुराने धनुष पर दया कीजिये, कहीं पुरज़े-पुरज़े न कर दीजियेगा। तीसरा बोला—ज़रा धीरे-धीरे क़दम रखिये ज़मीन

हिल रही है। किन्तु रामचन्द्र ने इन तीनों की तरफ तनिक भी ध्यान न दिया। जाकर धनुष को इस तरह उठा लिया जैसे कोई फूल हो और इतनी ज़ोर से चढ़ाया कि बीच से उसके दो टुकड़े हो गये। इसके टूटने से ऐसी आवाज़ हुई कि लोग चौंक पड़े। धनुष ज्योंही टूट कर गिरा, वह सफलता की प्रसन्नता से उछलकर दौड़े। राजा जनक सभा के बाहर चिन्ता-पूर्ण दृष्टि से यह दृश्य देख रहे थे। रामचन्द्र को गले लगा लिया और सीताजी ने आकर उनके गले में जयमाल डाल दी। नगर वालों ने प्रसन्न होकर जय-जयकार करना शुरू किया। मंगल-गान होने लगा, बन्दूकें छूटने लगीं। और सूरमा लोग एक-एक करके चुपके-चुपके सरकने लगे। शहर के छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, सब खुशी से फूले न समाते थे। सभों ने मुँह-माँगी मुराद पाई। सलाह हुई कि राजा दशरथ को इस शुभ समाचार की सूचना देनी चाहिये। कई ऊँट के सवार तुरन्त कोशल की ओर रवाना किये गये। विश्वामित्र राजकुमारों के साथ राजभवन में जाना ही चाहते थे कि मंडप के बाहर शोर और गुल सुनाई देने लगा। ऐसा मालूम होता था कि बादल गरज रहा है। लोग घबड़ा-घबड़ाकर इधर-उधर देखने लगे कि यह क्या आफ़त आने-वाली है। एक क्षण के बाद भेद खुला कि परशुराम ऋषि क्रोध से गरजते चले आ रहे हैं। देवों का-सा क़द, अंगारे-सी लाल-लाल आँखें, क्रोध से चेहरा लाल, हाथ में तीर कमान, कंधे पर फरसा—यह आपका रूप था। मालूम होता था, सबको कच्चा ही खा जायँगे। आते ही गरजकर बोले—किसने मेरे गुरु शिवजी का धनुष तोड़ा है, निकल आये मेरे सामने ज़रा मैं भी देखूँ वह कितना वीर है?

रामचन्द्र ने बहुत नम्रता से कहा—महाराज! आप के किसी भक्त ने ही तोड़ा होगा और क्या। परशुराम ने फरसे को घुमाकर कहा—कदापि नहीं। यह मेरे भक्त का काम नहीं। यह किसी शत्रु का काम है। अवश्य मेरे किसी बैरी ने यह कर्म किया है। मैं भी उसका सिर तन से अलग कर दूँगा। किसी तरह क्षमा नहीं कर सकता। मेरे गुरु का धनुष और उसे कोई क्षत्रिय तोड़ डाले? मैं क्षत्रियों का शत्रु

हूँ। जानी दुश्मन ! मैंने एक-दो बार नहीं, इक्कीस बार क्षत्रियों के रक्त की नदी बहाई है। अपने बाप के ख़ून का बदला लेने के लिए मैंने जहाँ क्षत्रियों को पाया है चुन-चुनकर मारा है। अब फिर मेरे हाथों क्षत्रियों पर वही आफ़त आनेवाली है। जिसने यह धनुष तोड़ा हो, मेरे सामने निकल आवे।

दिलेर और मनचले लक्ष्मण यह ललकार सुनकर भला कब सहन कर सकते थे। सामने आकर बोले—आप एक सड़े-से धनुष के टूटने पर इतना आपे से क्यों बाहर हो रहे हैं ? लड़कपन में ऐसे कितने ही धनुष खेल-खेलकर तोड़ डाले, तब तो आपको तनिक भी क्रोध न आया। आज इस पुराने, बेदम धनुष के टूट जाने से आप क्यों इतना कुपित हो रहे हैं ? क्या आप समझते हैं कि इन गीदड़-भभकियों से कोई डर जायगा ?

जैसे घी पड़ जाने से आग और भी तेज़ हो जाती है, उसी तरह लक्ष्मण के ये शब्द सुनकर परशुराम और भी भयावने हो गये। फरसे को हाथ में लेकर बोले—तू कौन है जो मेरे साथ इस धृष्टता से व्यवहार करता है ? तुझे क्या अपनी जान ज़रा भी प्यारी नहीं है। जो इस तरह मेरे सामने ज़बान चलाता है ? क्या यह धनुष भी वैसा ही था, जैसे तुमने लड़कपन में तोड़े थे ? यह शिवजी का धनुष था।

लक्ष्मण बोले—किसी का धनुष हो, मगर था बिलकुल सड़ा हुआ। छूते ही टूट गया। ज़ोर लगाने की ज़रूरत ही न पड़ी। इस ज़रा-सी बात के लिए व्यर्थ आप इतना बिगड़ रहे हैं। परशुराम और भी झल्लाकर बोले—अरे मूर्ख, क्या तू मुझे नहीं पहचानता ? मैं तुझे लड़का समझकर अभी तरह दिये जाता हूँ, और तू अपनी धृष्टता नहीं छोड़ता। मेरा क्रोध बुरा है। ऐसा न हो मैं एक ही बार में तेरा काम तमाम कर दूँ।

लक्ष्मण—मेरा काम तो तमाम हो चुका ! हाँ, मुझे डर है कि कहीं आपका क्रोध आपको हानि न पहुँचाये। आप-जैसे ऋषियों को कभी क्रोध न करना चाहिए।

परशुराम ने फरसा सँभालते हुए दाँत पीसते हुए कहा—क्या कहूँ, तेरी उम्र तुझे बचा रही है, वरना अब तक तेरा सर तन से जुदा कर देता।

लक्ष्मण—कहीं इस भरोसे मत रहियेगा। आप फूँककर पहाड़ नहीं उड़ा सकते। आप ब्राह्मण हैं, इसलिए आपके ऊपर दया आती है। शायद अभी तक आपका किसी क्षत्रिय से पाला नहीं पड़ा। जभी आप इतना बफर रहे हैं।

रामचन्द्र ने देखा कि बात बढ़ती जा रही है, तो लक्ष्मण को हाथ पकड़कर बिठा दिया और परशुराम से हाथ जोड़कर बोले—महाराज ! लक्ष्मण की बातों का आप बुरा न मानें। यह ऐसा ही धृष्ट है। यह अभी तक आपको नहीं जानता, वरना यों आपके मुँह न लगता। इसे क्षमा कीजिये, छोटों का कुसूर बड़े माफ़ किया करते हैं। आपका अपराधी मैं हूँ, मुझे जो दण्ड चाहें दें। आपके सामने सिर झुका हुआ है।

रामचंद्र की यह आदरपूर्ण बातचीत सुनकर परशुराम कुछ नर्म पड़े कि एकाएक लक्ष्मण को हँसते देखकर फिर उनके बदन में आग लग गई। बोले—राम ! तुम्हारा यह भाई अति धृष्ट है। विनय और शील तो इसे छू तक नहीं गया। जो कुछ मुँह में आता है बक डालता है। रंग इसका गोरा है, पर दिल इसका काला है। ऐसा अशिष्ट लड़का मैंने नहीं देखा।

अभी तक तो लक्ष्मण परशुराम को केवल छेड़ रहे थे, किन्तु ये बातें सुनकर उन्हें क्रोध आ गया। बोले—सुनिये महाराज ! छोटों का काम बड़ों का आदर करने का है, किन्तु इसकी भी सीमा होती है। आप अब इस सीमा से बढ़े जा रहे हैं। आखिर आप क्यों इतना अप्रसन्न हो रहे हैं ? आपके बिगड़ने से तो धनुष जुड़ न जायगा। हाँ, जग-हँसाई अवश्य होगी। अगर यह धनुष आपको ऐसा ही प्रिय है, तो किसी कारीगर से जुड़वा दिया जायगा। इसके अतिरिक्त और हम क्या कर सकते हैं। आपका क्रोध बिल्कुल व्यर्थ है।

मारे क्रोध के परशुराम की आँखें बीर-बहूटी की तरह लाल हो गईं। वह थर-थर काँपने लगे। उनके नथने फड़कने लगे। रामचन्द्र ने उनकी यह दशा देखकर लक्ष्मण को वहाँ से चले जाने का इशारा किया और अत्यन्त विनीत भाव से बोले—महाराज! बड़ों को छोटे कमसमझ आदमियों की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इसके बकने से क्या होता है। हम सब आपके सेवक हैं। धनुष मैंने तोड़ा है। इसका दोषी मैं हूँ। इसका जो दंड आप उचित समझें मुझे दें। आप इसका जो दंड माँगें, मैं देने को तैयार हूँ।

परशुराम ने नर्म होकर कहा—तावान मैं तुमसे क्या लूँगा। मुझे यही भय है कि इस धनुष के टूट जाने से क्षत्रियों को फिर घमण्ड होगा और मुझे फिर उनका अभिमान तोड़ना पड़ेगा। यह शिव का धनुष नहीं टूटा है, ब्राह्मणों के तेज और बल को धक्का लगा है।

रामचन्द्र ने हँसकर कहा—ऋषिराज! क्षत्रिय ऐसे नीच नहीं हैं कि इस ज़रा-से धनुष के टूट जाने से उन्हें घमण्ड हो जाय। अगर आप मेरी वीरता की विशेषता देखना चाहते हैं तो इससे भी बड़ी परीक्षा लेकर देखिए।

परशुराम—तैयार है?

राम—जी हाँ, तैयार हूँ।

परशुराम ने अपना तीर और कमान रामचन्द्र के समीप फेंककर कहा—अच्छा इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा। देखूँ, तो कितना वीर है।

रामचन्द्र ने धनुष उठा लिया और बड़ी आसानी से प्रत्यंचा चढ़ाकर बोले—कहिये, अब क्या करूँ। तोड़ दूँ इस धनुष को?

परशुराम का सारा क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने बढ़कर रामचंद्र को हृदय से लगा लिया और उन्हें आशीर्वाद देते हुए अपना धनुष-बाण लेकर विदा हो गये। राजा जनक की जान सूख रही थी कि न जाने क्या विपदा आनेवाली है। परशुराम के चले जाने से उनकी जान में जान आई। फिर मंगल-गान होने लगे।

राजा दशरथ रामचन्द्र और लक्ष्मण का कुछ समाचार न पाने से

बहुत चिन्तित हो रहे थे। यह शुभ-समाचार मिला तो बड़े प्रसन्न हुए। अयोध्या में भी उत्सव होने लगा। दूसरे दिन धूमधाम से बारात सजाकर वह मिथला चले।

राजा जनक ने बारात की खूब सेवा-सत्कार की और शास्त्र-विधि से सीताजी का विवाह रामचन्द्र से कर दिया। उनकी एक दूसरी लड़की थी जिसका नाम उर्मिला था। उसकी शादी लक्ष्मण से हो गई। राजा जनक के भाई के भी दो लड़कियाँ थीं। वे दोनों भरत और शत्रुघ्न से ब्याही गईं। कई दिन के बाद बारात बिदा हुई। राजा जनक ने अनगिनती सोने-चाँदी के बर्तन, हीरे, जवाहर, जड़ाऊ भूलों से सजे हुए हाथी, नागौरी बैलों से जुते हुए रथ, अरबी जाति के घोड़े दहेज में दिये।

अयोध्या-कांड

वन-वास

राजा दशरथ कई साल तक बड़ी तनदेही से राज करते रहे; किंतु बुढ़ापे के कारण उनमें अब वह पहले-सा जोश न था, इसलिए इन्होंने रामचंद्रजी से राज्य के कामों में मदद लेना शुरू किया। इसमें एक गुप्त युक्ति यह भी थी कि रामचंद्र को शासन का अनुभव हो जाय। यों केवल नाम के लिए, वह स्वयं राजा थे, किन्तु अधिकतर काम रामजी के हाथों से ही होता था। राम के सुन्दर प्रबन्ध की सारे राज्य में प्रशंसा होने लगी। जब राजा दशरथ को विश्वास हो गया कि राम अब शासक के धर्मों से भली प्रकार अवगत हो गये हैं और उन पर योग्यता से आचरण भी कर सकते हैं तो एक दिन उन्हों ने अपने दरबार के प्रमुख व्यक्तियों को, तथा नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों को बुलाकर कहा—मुझे आप लोगों की सेवा करते एक समय बीत गया। मैंने सदा न्याय के साथ राज करने की कोशिश की। अब मैं चाहता हूँ कि राज्य रामचंद्र के सिपुर्द कर दूँ और अपने जीवन के अंतिम दिन किसी एकान्त स्थान में बैठकर परमात्मा की याद में बिताऊँ।

यह प्रस्ताव सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए और बोले—महाराज! आपकी शरण में हम जिस सुख और चैन से रहे उसकी याद हमारे दिलों से कभी न मिटेगी। जी तो यही चाहता है कि आपका हाथ हमारे सिर पर हमेशा रहे। लेकिन जब आपकी यही इच्छा है कि आप परमात्मा की याद में ज़िन्दगी बसर करें तो हम लोग इस शुभ काम में बाधक न होंगे। आप खुशी से ईश्वर की उपासना करें। हम जिस तरह आपको अपना मालिक और संरक्षक समझते थे, उसी तरह रामचंद्र को समझेंगे।

इसी बीच में गुरु वशिष्ठजी भी आ गये। उन्हें भी यह प्रस्ताव पसन्द आया। राजा ने कहा—जब आप लोग राम को चाहते हैं तो फिर अच्छी साइत देखकर उनका राजतिलक कर देना चाहिये।

जितना ही जल्दी मुझे अवकाश मिल जाय उतना ही अच्छा। सब लोगों ने इसे बड़ी खुशी से स्वीकार किया। तिलक की साइत निश्चित हो गई। नगर में ज्योंही लोगों को ज्ञात हुआ कि रामचंद्र का तिलक होनेवाला है, उत्सव मनाने की तैयारियाँ होने लगीं। जिस दिन तिलक होनेवाला था, उसके एक दिन पहले से शहर की सजावट होने लगी। घरों के दरवाजों पर बन्दनवारें लटकाई जाने लगीं, बाज़ारों में झण्डियाँ लहराने लगीं; सड़कों पर छिड़काव होने लगा, बाजे बजने लगे।

रानी कैकेयी की एक दासी मन्थरा थी। वह अति कुरूप कुबड़ी औरत थी। कैकेयी के साथ मायके से आई थी, इसलिए कैकेयी उसे बहुत चाहती थी। वह किसी काम से रनिवास के बाहर निकली, तो यह धूमधाम देखकर एक आदमी से इसका कारण पूछा। उसने कहा—तुझे इतनी ख़बर भी नहीं! अयोध्या ही में रहती है या कहीं बाहर से पकड़कर आई है? कल श्री रामचंद्र का तिलक होनेवाला है। यह सब उसी की तैयारियाँ हैं।

यह समाचार सुनते ही मन्थरा को जैसे कम्प आ गया। मारे डाह के जल उठी। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि कैकेयी के राजकुमार भरत गद्दी पर बैठें और कैकेयी राजमाता हों, तब मैं जो चाहूँगी करूँगी। फिर तो मेरा ही राज होगा। और रानियों की दासियों पर धाक जमाऊँगी। सर से पैर तक गहनों से लदी हुई निकलूँगी तो लोग मुझे देखकर कहेंगे, वह मन्थरा देवी जाती हैं। फिर मुझे किसी ने कुबड़ी कहा तो मजा चखा दूँगी। इसी तरह के मन्सूबे उसने दिल में बाँध रखे थे। इस ख़बर ने उसके सारे मन्सूबे धूल में मिला दिये। जिस काम के लिए जाती थी उसे बिल्कुल भूल गई। बदहवास दौड़ी हुई महल में गई और कैकेयी से बोली—महारानीजी! आपने कुछ और सुना? कल राम का तिलक होनेवाला है।

तीनों रानियों में बड़ा प्रेम था। उनमें नाम को भी सौतिया डाह न था। जिस तरह कौशिल्या भरत को राम ही की तरह प्यार करती थी, उसी तरह कैकेयी भी राम को प्यार करती थी। रामचंद्र सबसे बड़े थे

इसलिए यह मानी हुई बात थी कि वही राजा होंगे। मन्थरा से यह खबर सुनकर कैकेयी बोली—मैं यह ख़बर पहले ही सुन चुकी हूँ, लेकिन तूने सबसे पहले मुझसे कहा इसलिए यह सोने का हार तुझे इनाम देती हूँ। यह ले।

मन्थरा ने सर पर हाथ मारकर कहा—महारानी! यह इनाम मैं शौक़ से लेती अगर राम की जगह राजकुमार भरत के तिलक की ख़बर सुनती। यह इनाम देने की बात नहीं है, रोने की बात है। आप अपना भला-बुरा कुछ नहीं समझतीं।

कैकेयी—चुप रह डाइन! तुझे ऐसी बातें मुँह से निकालते लाज भी नहीं आती? रामचंद्र मुझे भरत से भी प्यारे हैं। तू देखती नहीं कि वह मेरा कितना आदर करते हैं। बिना मुझसे सलाह लिये कोई काम नहीं करते। फिर वह सबसे बड़े हैं। गद्दी पर अधिकार भी तो उन्हीं का है। फिर जो ऐसी बात मुँह से निकाली, तो ज़बान खिंचवा लूँगी।

मन्थरा—हाँ, ज़बान क्यों न खिंचवा लोगी! जब बुरे दिन आते हैं, तो आदमी की बुद्धि पर इसी प्रकार पर्दा पड़ जाता है। तुम जैसी भोली-भाली, नेक हो, वैसा ही सब को समझती हो। राम को बेटा-बेटा कहते यहाँ तुम्हारी ज़बान सूखती है, वहाँ रानी कौशिल्या चुपके-चुपके तुम्हारी जड़ खोद रही हैं। चार दिन में वही रानी होंगी। तुम्हारी कोई बात भी न पूछेगा। बस, महाराज के पूजा के बर्तन धोया करना। मेरा काम तुम्हें समझाना था, समझा दिया। तुम्हारा नमक खाती हूँ, उसका हक़ अदा कर दिया। मेरे लिए जैसे राम, वैसे भरत। मैं दासी से रानी तो होने की नहीं। हाँ, तुम्हारे विरुद्ध कोई बात होते देखती हूँ तो रहा नहीं जाता। मेरे मुँह में आग लगे। कहाँ से कहाँ मैंने यह ज़िक्र छेड़ दिया कि सवेरे-सवेरे डाइन, चुड़ैल बनना पड़ा। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

इन बातों ने आख़िर कैकेयी पर असर किया। समझी, ठीक ही तो है, रामचन्द्र राजा होकर भरत को निकाल दें या मरवा ही डालें तो कौन उनका हाथ पकड़ेगा। मैं भी दूध की मक्खी की तरह

निकाल दी जाऊँगी। बहुत होगा रोटी और कपड़ा मिल जायगा। राज्य पाकर सभी की मति बदल जाती है। राम को भी अभिमान हो जाय तो क्या आश्चर्य है। जभी कौशल्या मेरी इतनी ख़ातिर करती हैं। यह सब मुझे तबाह करने की चालें हैं। यह सोचकर उसने मन्थरा से कहा—मन्थरा, देख मेरी बातों को बुरा न मान। मैं क्या जानती थी कि मुझे और भरत को तबाह करने के लिए यह कौशल रचा जा रहा है। मैं तो सीधी-सादी स्त्री हूँ, छक्का-पंजा क्या जानूँ। अब तूने यह बात सुझाई तो मुझे भी सचाई मालूम हो रही है; मगर अब तो तिलक की साइत निश्चित हो चुकी। कल सवेरे तिलक हो जायगा। अब हो ही क्या सकता है।

मन्थरा—होने को तो बहुत कुछ हो सकता है। बस ज़रा स्त्री-हठ से काम लेना पड़ेगा। मैं सारी तरकीबें बतला दूँगी। ज़रा इन लोगों की चालाकी देखो कि तिलक की साइत उस समय ठीक की, जब राजकुमार भरत ननिहाल में हैं। सोचो, अगर दिल साफ़ होता तो दस-पाँच दिन और न ठहर जाते। भरत के आ जाने पर तिलक होता तो क्या बिगड़ जाता; मगर वहाँ तो दिलों में मैल भरा हुआ है। उनकी अनुपस्थिति में चुपके से तिलक कर देना चाहते हैं।

कैकेयी—हाँ, यह बात भी तुझे ख़ूब सूझी। शायद इसी लिए भरत-को पहले यहाँ से खिसका दिया गया है, पहले से ही यह बात सधी बदी थी। खेद है, मुझे मिट्टी में मिलाने के लिए ऐसे-ऐसे षड्यंत्र रचे जाते रहे और मैं बेख़बर बैठी रही। बतला, अब मैं क्या करूँ। मेरी तो बुद्धि कुछ काम नहीं करती।

मन्थरा ने अपना कूबड़ हिलाकर कहा—वारी जाऊँ महारानी! आप भी क्या बातें करती हैं। आप को ईश्वर ने ऐसा रूप दिया है और महाराज को आप से ऐसा प्रेम है कि रात भर में आप न जाने क्या-क्या कर सकती हैं। आप तो सारी बातें भूल जाती हैं। ऐसी भुलक्कड़ न होतीं तो बैरियों को ऐसे षड्यन्त्र करने का मौक़ा ही क्यों मिलता। अब तक तो भरत का कभी तिलक हो गया होता। तुम्हीं ने

एक बार मुझसे कहा था कि महाराज ने तुम्हें दो वरदान देने का वचन दिया है। क्या वह बात भूल गईं ?

कैकेयी—हाँ, भूल तो गई थी, पर अब याद आ गया। एक बार महाराज लड़ाई के मैदान से घायल होकर आये थे और मैंने मरहम-पट्टी करके रात भर में उन्हें अच्छा कर दिया था। उसी समय उन्होंने मुझे दो वरदान दिये थे। मैंने कहा था, मुझे आपकी दया से किस बात की कमी है। जब आवश्यकता होगी, माँग लूँगी।

मन्थरा—बस फिर तो सारी बात बनी-बनाई है। आज तुम कोप-भवन में जाकर बैठ जाओ। आभूषण इत्यादि सब उतार फेंको। केवल एक मैली-कुचैली साड़ी पहन लेना, और सिर के बाल खोलकर ज़मीन पर पड़ रहना। महाराज तुम्हारी यह दशा देखते ही घबरा जायँगे। बस उसी समय दोनों वचनों की याद दिलाकर कहना कि अब उन्हें पूरा कीजिये—एक यह कि राम के बदले भरत का तिलक हो, दूसरे यह कि राम को चौदह वर्ष के लिए वन-वास दिया जाय। महाराज वचन के पक्के हैं, अवश्य ही मान जायँगे। फिर आनन्द से राज्य करना।

दिन तो उत्सव की तैयारियों में गुज़रा। रात को जब राजा दश-रथ कैकेयी के महल में पहुँचे तो चारो तरफ अँधेरा छाया हुआ, न कहीं गाना न बजाना, न राग न रंग। घबराकर एक दासी से पूछा—यह अँधेरा क्यों छाया हुआ है, चारो तरफ़ उदासी क्यों फैली हुई है? तू जानती है महारानी कैकेयी कहाँ हैं? उनकी तबियत तो अच्छी है?

दासी ने कहा—महारानीजी ने गाने-बजाने का निषेध कर दिया है। वह इस समय कोप-भवन में हैं।

महाराज का माथा ठनका। यह रंग में क्या भंग हुआ। अवश्य कोई न कोई विपत्ति आनेवाली है। उनका दिल धड़कने लगा। घब-राये हुए कोप-भवन में गये तो देखा, कैकेयी भूमि पर पड़ी सिसकियाँ भर रही हैं।

राजा दशरथ कैकेयी को बहुत प्यार करते थे। उनकी यह दशा

देखते ही उनके हाथों के तोते उड़ गये। भूमि पर बैठकर बोले—महारानी ! कुशल तो है ? तुम्हारी तबियत कैसी है ? शीघ्र बतलाओ, वरना मैं पागल हो जाऊँगा। क्या बात हुई है ? तुम्हें किसी ने कुछ ताना दिया है ? कोई बात तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध हुई है ? जिसने तुमसे यह धृष्टता की हो, उसको इसी समय दंड दूँगा।

कैकेयी ने आँसू पोंछते हुए कहा—मुझे कुछ नहीं हुआ है। बहुत भली प्रकार हूँ। खाने को रोटियाँ, पहनने को कपड़े, रहने को मकान मिल ही गया है, अब और किसी बात की कमी हो सकती है ? आप भी प्रेम करते ही हैं। जाइये, उत्सव मनाइये। मुझे पड़ी रहने दीजिये। जिसका भाग्य ही बुरा है, उसे आप क्या करेंगे।

राजा ने कैकेयी को भूमि से उठाने की चेष्टा करते हुए कहा—महारानी, ऐसी बातें न करो। मुझे दुःख होता है। तुम्हें ज्ञात है, मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ। मैंने कभी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। तुम्हें जो शिकायत हो, साफ़-साफ़ कह दो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसी समय उसे पूरा करूँगा।

कैकेयी ने त्योरियाँ बदलकर कहा—आप जितना मुझसे कहते हैं, उसका एक हिस्सा भी करते, तो मेरी हालत आज ऐसी ख़राब न होती। अब मुझे मालूम हुआ है कि आपका यह प्रेम केवल बातों का है, आप बातों से पेट भरना ख़ूब जानते हैं। दुनिया आपको वचन का पक्का कहती है। आपके वंश में लोग वचन के पीछे जान देते चले आये हैं ; मगर मुझसे तो आपने जितने वादे किये, उनमें एक भी पूरा न किया। अब और किस मुँह से माँगूँगी।

राजा—मुझे यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है। जहाँ तक मुझे याद है, मैंने तुम्हारे साथ जितने वादे किये, वे सब पूरे किये। वह कौन-सा वादा है, जिसे मैंने न पूरा किया ? इसी समय पूरा करूँगा। इस तनिक-सी बात के लिए तुम्हें कोप-भवन में बैठने की क्या ज़रूरत थी ?

कैकेयी भूमि से उठकर बैठी और बोली—याद कीजिये, एक बार

आपने मुझे दो वरदान दिये थे—जिस दिन आप लड़ाई में घायल होकर लौटे थे।

राजा—हाँ, याद आ गया। ठीक है। मैंने दो वरदान दिये थे। मगर तुमने ही तो कहा था कि जब मुझे जरूरत होगी, मैं लूँगी।

कैकेयी—हाँ, मैंने ही कहा था। अब वह समय आ गया है। आप उन्हें पूरा करने को तैयार हैं ?

राजा—मन और प्राण से। यदि तुम जान भी माँगो तो निकाल-कर दे दूँगा।

कैकेयी ने ज़मीन की तरफ़ ताकते हुए कहा—तो सुनिये। मेरा पहला वरदान यह है कि राम के बदले भरत का तिलक हो और दूसरा यह कि राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास दिया जाय।

ओह निष्ठुर कैकेयी! तूने यह क्या किया ? तुझे अपने वृद्ध पति पर तनिक भी दया न आई। क्या तुझे ज्ञात नहीं कि रामचंद्र ही उनके जीवनाधार हैं। राजा के चेहरे का रंग पीला पड़ गया। मालूम हुआ, साँप ने काट लिया हो। ठंडी साँस भरकर बोले—कैकेयी क्या तुम्हारे मुँह से विष की बूँदें टपक रही हैं ? क्या तुम्हारे हृदय में राम की ओर से इतना मालिन्य है ? राम का आज संसार में कोई बुरा चाहनेवाला नहीं। वह सबकी आँखों का तारा है। तुम्हारा वह जितना आदर करता है, उतना शायद अपनी मा का नहीं करता। तुमने आज तक उसकी शिकायत न की, बल्कि हमेशा उसके शील-विनय की तारीफ़ किया करती थीं। आज यह कायापलट क्यों हो गई ? अवश्य किसी शत्रु ने तुम्हारे कान भरे हैं और राम की बुराइयाँ की हैं।

कैकेयी ने तिनककर कहा—कान तुम्हारे भरे गये हैं, मेरे कान नहीं भरे गये हैं। अपना लाभ और हानि जानवर तक समझते हैं। क्या मैं जानवरों से भी गई-बीती हूँ ? निश्चय देख रही हूँ कि मेरा बाग़ उजाड़ किया जा रहा है। क्या उसकी रक्षा न करूँ ? अपनी गर्दन पर तलवार चल जाने दूँ ? आपको अब तक मैं निर्मल-हृदय समझती थी। मगर अब मालूम हुआ कि आप भी केवल बातों में प्रेम के हरे-भरे बाग़

दिखाकर मुझे नष्ट करना चाहते हैं। कौशिल्या रानी ने आपको खूब मन्त्र पढ़ाया है। उस नागिन के काटे की दवा नहीं। अब मैं दिखा दूँगी कि कैकेयी भी राजा की लड़की है, किसी शूद्र-चमार की नहीं कि इन चालों को न समझे।

राजा—कैकेयी, मैं कभी झूठ नहीं बोला, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि मैंने राम के तिलक का निश्चय स्वयं किया। कौशिल्या ने इस विषय में मुझसे एक शब्द भी नहीं कहा। तुम्हारा उन पर सन्देह करना अन्याय है। राम ने भी कभी भरत के विरुद्ध एक शब्द नहीं कहा। मेरे लिए राम और भरत दोनों बराबर हैं। किन्तु अधिकार तो बड़े लड़के का ही है। यदि मैं भरत का तिलक करना भी चाहूँ, तो तुम समझती हो, भरत उसे स्वीकार करेंगे ? कदापि नहीं। भरत के लिए यह असम्भव है कि वह राम का अधिकार छीनकर प्रसन्न हों। राम और भरत एक प्राण दो शरीर हैं। तुमने इतने दिनों के बाद वरदान भी माँगे तो ऐसे, जो इस घर को नष्ट कर देंगे—शायद इस राज्य का अंत ही कर दें। खेद !

कैकेयी ने उँगली नचाकर कहा—अच्छा ! तो क्या आपने समझा था कि मैं आप से खेलने के लिए गुड़ियाँ माँगूँगी ? क्या किसी मजदूर की लड़की हूँ ? अब इन चिकनी-चुपड़ी बातों में आप मुझे न फँसा सकेंगे। आपको और इस घर के आदमियों को खूब देख चुकी। आँखें खुल गईं। यदि आप को वचन के सच्चे बनने का दावा है तो मेरे दोनों वरदान पूरे कीजिये। अन्यथा फिर रघुवंशी होने का घमण्ड न कीजियेगा। यह कलंक सदैव के लिए अपने माथे पर लगा लीजिए कि रघुकुल के राजा दशरथ ने वादे किये थे, पर जब उन्हें पूरा करने का समय आया तो साफ़ निकल गये।

राजा ने तिलमिलाकर कहा—कैकेयी, क्यों जले घाव पर नमक छिड़कती हो ! मैं अपने वचन से कभी न फिरूँगा, चाहे इसमें मेरा जीवन, मेरे वंश और मेरे राज्य का अन्त ही क्यों न हो जाय। शायद ब्रह्मा ने राम के भाग्य में बनवास ही लिखा हो। शायद इसी बहाने से

इस वंश का नाश लिखा हो। किन्तु इसका अपयश सदा के लिये तुम्हारे नाम के साथ लगा रहेगा। मैं तो शायद यह चोट खाकर जीवित न रहूँगा। मगर मेरी यह बात गिरह बाँध लो कि राम को वनवास देकर तुम भरत के राज्य का सुख न देख सकोगी।

कैकेयी ने झल्लाकर कहा—यह आप भरत को शाप क्यों देते हैं? भरत राजा होंगे। आपको उन्हें राज्य देना पड़ेगा। वह राजा हो जाय, यही मेरी अभिलाषा है। मैं सुख देखने के लिए जीवित रहूँगी या नहीं, इसका हाल ईश्वर जाने।

राजा—यह तो मैं बड़ी प्रसन्नता से करने को तैयार हूँ। मेरे लिए राम और भरत में कोई अंतर नहीं। मैं इसी समय भरत को बुलाने के लिए आदमी भेज सकता हूँ। ज्योंही वह आ जायँगे, उनका तिलक हो जायगा। किन्तु राम को वनवास देते हुए मेरे हृदय के टुकड़े हुए जाते हैं। हाय! मेरा प्यारा राजकुमार चौदह वर्ष तक जंगलों में कैसे रहेगा? जो सदा फूलों की सेज पर सोया, वह पत्थर की चट्टानों पर घास-पात का बिछौना बिछाकर कैसे सोयेगा? कैकेयी, ईश्वर के लिए मुझ पर दया करो, इस वंश पर दया करो। अपना दूसरा वरदान पूरा करने के के लिए मुझे विवश न करो।

कैकेयी ने राजा की ओर देखकर आँखें नचाईं और बोली—तो साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते कि मैं अपने वचन पूरे न करूँगा। क्या मैं इतना भी नहीं समझती कि राम के रहते बेचारा भरत कभी आराम से न बैठने पायेगा। राम अपनी मीठी-मीठी बातों में प्रजा का हृदय वश में करके राज्य में क्रान्ति करा देंगे। भरत का जीवित रहना कठिन हो जायगा, मेरे दोनों वरदान आपको पूरे करने पड़ेंगे। अब आपके धोखे में न आऊँगी।

राजा समझ गये कि कैकेयी को समझाना अब बेकार है। मैं जितना ही समझाऊँगा, उतना ही यह झल्लायेगी। सिर थामकर सोचने लगे कि क्या जवाब दूँ। मालूम होता है, आँखों में अँधेरा छा गया है। कोई हृदय को चीरे डालता है। हाय! जीवन की सारी अभिलाषाएँ

धूल में मिली जा रही हैं। ईश्वर! यदि तुम्हें यही करना था तो बेटे दिये ही क्यों। बला से निःसंतान रहता। युवा बेटे का दुःख तो न देखना पड़ता। यह तीन-तीन विवाह करने का फल है! बुढ़ापे में विवाह करने का यह फल है! उससे अधिक मूर्ख दुनिया में कोई नहीं जो बुढ़ापे में विवाह करता है। वह जान-बूझकर विष का प्याला पीता है। हाय! सुबह होते ही राम मुझसे अलग हो जायँगे। मेरा प्यारा हृदय का टुकड़ा जंगल की राह लेगा। भगवन्! इसके पहले कि इसके बनवास की आज्ञा मेरे मुँह से निकले, तुम मुझे इस दुनिया से उठा लेना। इससे पहले कि मैं उसे साधुओं के वेष में वन की ओर जाते देखूँ, तुम मेरी आँखों को निस्तेज कर देना। हाय! ईश्वर करता राम इतना आज्ञाकारी न होता। क्या ही अच्छा होता कि वह मेरी आज्ञा मानना अस्वीकार कर देता। कैकेयी राजा को चिंता में डूबे हुए देखकर बोली—आप सोच क्या रहे हैं? बोलिये, मेरी बातें स्वीकार करते हैं या नहीं?

राजा ने आँसुओं से भरी हुई आँखों से कैकेयी को देखकर कहा—रानी! यह पूछने की बात नहीं। अपने वचन से न फिरूँगा। तुम्हारी दोनों बातें स्वीकार हैं। तुम इतनी सुन्दर होकर हृदय से इतनी कलुष-पूर्ण हो, इसका मुझे अनुमान, विचार तक न था। मैं न जानता था कि तुम मेरे दोनों वरदानों का यह प्रयोग करोगी। खैर तुम्हारा राज्य तुमको सुखी करे। प्यारे राम! मुझे क्षमा करना। तुम्हारा पिता जिसने तुम्हें गोद में खिलाया, आज एक स्त्री के छल में पड़कर तुम्हारी गर्दन पर तलवार चला रहा है। किन्तु, बेटा! देखना, रघुकुल के नाम पर कलंक न लगने पाये..,

यह कहते-कहते राजा मूर्छित हो गये। कैकेयी दिल में प्रसन्न हो रही थी, कल से अयोध्या में मेरे नाम का डंका बजेगा। वह सवेरे किसी दूत को कश्मीर भेजकर भरत को बुलाने का निश्चय कर रही थी। अहा! वह घड़ी कितनी शुभ होगी, जब भरत अयोध्या के राजा होंगे! राजा थोड़ी-थोड़ी देर के बाद करवट बदलते और कराहते थे। हाय राम! हाय राम! इसके अतिरिक्त उनके मुँह से कोई शब्द न निकलता था।

इस प्रकार सारी रात बीत गई। सुबह को शहर के धनीमानी, विद्वान्, ऋषि-मुनि और दरबार के सभासद तिलक का अनुष्ठान करने के लिए उपस्थित हुए। हवन-कुंड में आग जलाई गई। आचार्य लोग वेद-मंत्रों का पाठ करने लगे। भिक्षुओं का एक दल दान के रुपए लेने के लिए फाटक पर एकत्रित हो गया। लोगों की आँखें राजमहल के द्वार की ओर लगी हुई हैं। राजा साहब आज क्यों इतना विलम्ब कर रहे हैं। हर आदमी अपने पास बैठे हुए आदमी से यही प्रश्न कर रहा है। शायद राजसी पोशाक पहन रहे हों। किन्तु नहीं, वह तो बहुत तड़के उठा करते हैं। अन्दर से कोई समाचार भी नहीं आता। रामचन्द्र स्नान-पूजा से निवृत्त होकर बैठे हैं। कौशिल्या की प्रसन्नता का अनुमान कौन कर सकता है? प्रासाद में मंगल-गीत गाये जा रहे हैं। द्वार पर नौबत बज रही है, पर दशरथ का पता नहीं।

अन्त में गुरु वशिष्ठ ने साइत टलते देखकर मंत्री सुमंत्र को महल में भेजा कि जाकर महाराज को बुला लाओ।

सुमंत्र अन्दर गये तो क्या देखते हैं कि महाराज भूमि पर पड़े कराह रहे हैं, और कैकेयी द्वार पर खड़ी है। सुमंत्र ने रानी कैकेयी को प्रणाम किया और बोले—महाराज की नींद क्या अभी नहीं टूटी? बाहर गुरु वशिष्ठजी बैठे हुए हैं। तिलक का मुहूर्त टला जाता है। आप तनिक उन्हें जगा दें।

कैकेयी बोली—महाराज को प्रसन्नता के मारे आज रात भर नींद नहीं आई। इस समय तनिक आँख लग गई है। अभी जगा दूँगी तो उनका सिर भारी हो जायगा। तुम तनिक जाकर रामचन्द्र को अन्दर भेज दो। महाराज उनसे कुछ कहना चाहते हैं।

सुमंत्र ने यह दृश्य देखकर ताड़ लिया कि अवश्य कोई षड्यंत्र उठ खड़ा हुआ है। जाकर रामचन्द्रजी से यह सन्देश कहा। रामचन्द्रजी तुरन्त अन्दर आकर राजा दशरथ के सामने खड़े हो गये और प्रणाम करके बोले—पिता जी, मैं उपस्थित हूँ, मुझे क्यों स्मरण किया है?

दशरथ ने एक बार विवश निगाहों से रामचन्द्र को देखा और ठंडी

साँस भरकर सिर झुका लिया। उनकी आँखों से आँसू जारी हो गये। रामचन्द्र को सन्देह हुआ कि सम्भवत: राजा महाराज मुझसे अप्रसन्न हैं। बोले—माताजी ! पिताजी ने मेरी बातों का कुछ भी उत्तर न दिया, शायद वह मुझसे नाराज़ हैं।

कैकेयी बोली—नहीं बेटा, वह तुमसे नाराज़ नहीं हैं। तुमसे वह इतना प्रेम करते हैं, तुमसे क्यों नाराज़ होने लगे। वह तुमसे कुछ कहना चाहते है। किन्तु इस भय से कि शायद तुम्हें बुरा मालूम हो, या तुम उनकी आज्ञा न मानो, कहते हुए झिझकते हैं। इसलिए अब मुझी को कहना पड़ेगा। बात यह है, महाराज ने मुझे दो वचन दिये थे। आज वह उन वचनों को पूरा करना चाहते हैं। यदि तुम उन्हें पूरा करने को तैयार हो तो मैं कहूँ।

राम ने निडर भाव से कहा—माताजी, मेरे लिए पिता की आज्ञा मानना कर्तव्य है। संसार में ऐसा कोई बल नहीं, जो मुझे यह कर्तव्य पालन करने से रोक सके। आप तनिक भी विलंब न करें। मैं सर-आँखों पर उनकी आज्ञा का पालन करूँगा। मेरे लिए, इसलिए, इससे अधिक और क्या सौभाग्य की बात होगी।

कैकेयी—हाँ, सुपुत्र बेटों का धर्म तो यही है। महाराज ने अब तुम्हारी जगह भरत का तिलक करने का निर्णय किया है और तुम्हें चौदह बरस के लिए वनवास दिया है। महाराज ये बातें अपने मुँह से न कह सकेंगे ; मगर वह जो कुछ चाहते हैं, वह मैंने तुमसे कह दिया। अब मानना तुम्हारे अधिकार में है। यदि तुमने न माना, तो दुनिया में राजा पर यह अभियोग लगेगा कि उन्होंने अपने वचन को पूरा न किया, और तुम्हारे सिर यह कि पिता की आज्ञा न मानी।

रामचन्द्र यह आज्ञा सुनकर थोड़ी देर के लिए सहम उठे। क्या समझते थे और क्या हुआ। सारी परिस्थिति उनकी समझ में आ गई। यदि वह चाहते तो इस आज्ञा की चिन्ता न करते। सारी अयोध्या उनके नाम पर मरती थी। किंतु सुशील बेटे पिता की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा समझते हैं।

राम ने उसी समय निश्चय कर लिया कि मुझ पर चाहे जो कुछ बीते, पिता की आज्ञा मानना निश्चित है। बोले—माताजी, मेरी ओर से आप तनिक भी चिन्ता न करें। मैं आज ही अयोध्या से चला जाऊँगा। आप किसी दूत को भेजकर भरत को बुला भेजिये। मुझे उनके राजतिलक होने का लेशमात्र भी खेद नहीं है। मैं अभी माता कौशिल्या से पूछकर और सीताजी को आश्वासन देकर जंगल की राह लूँगा।

यह कहकर रामचंद्रजी ने राजा के चरणों पर सिर झुकाया, माता कैकेयी को प्रणाम किया और कमरे से बाहर निकले। राजा दशरथ के मुँह से दुःख या खेद का एक शब्द भी न निकला। वाणी उनके अधिकार में न थी। ऐसा मालूम हो रहा था कि नसों की राह जान निकली जा रही है। जी में आता था कि राम के पैर पकड़कर रोक लूँ। अपने ऊपर क्रोध आ रहा था। कैकेयी के ऊपर क्रोध आ रहा था। ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि मुझे मृत्यु आ जाय, इसी समय इस जीवन का अंत हो जाय। छाती फटी जाती थी। आह ! मेरा प्यारा बेटा इस तरह चला जा रहा है और मैं जबान से ढाढ़स का एक वाक्य भी नहीं निकाल सकता। कौन पिता इतना निर्दय होगा ! यह सोचते-सोचते राजा को फिर मूर्च्छा आ गई।

रामचन्द्र यहाँ से कौशिल्या के पास पहुँचे। वे उस समय निर्धनों को अन्न और वस्त्र देने का प्रबन्ध कर रही थीं। राम को देखते ही बोलीं—क्या हुआ बेटा ? राजा बाहर गये कि नहीं ? अब तो देर हो रही है।

रामचंद्र ने आवाज को सँभालकर कहा—माताजी, मामला कुछ और हो गया। महाराज ने अब भरत को राज देने का निर्णय किया है और मुझे चौदह बरस के वनवास की आज्ञा दी है। मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूँ, आज ही अयोध्या से चला जाऊँगा।

रानी कौशिल्या को मूर्च्छा-सी आ गई। रामचंद्र की ओर निस्तेज आँखों से देखती रह गईं, जैसे कोई मिट्टी की मूर्ति हो।

लक्ष्मण भी वहीं खड़े थे। यह बातें सुनते ही उनकी त्योरियों पर बल पड़ गये। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। बोले—यह नहीं हो सकता। कदापि नहीं हो सकता। भरत कभी लक्ष्मण के जीते-जी अयोध्या के राजा नहीं हो सकते। आप क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय का धर्म है, अपने अधिकार के लिए युद्ध करना। सारी अयोध्या, सारा कोशल आपकी ओर है। सेना आपका संकेत पाते ही आपकी ओर हो जायगी। भरत अकेले कर ही क्या सकते हैं। यह सब रानी कैकेयी का षड्यन्त्र है।

रामचंद्र ने लक्ष्मण की ओर प्रेम-पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—भैया, कैसी बातें करते हो। रघुकुल में जन्म लेकर पिता की आज्ञा न मानूँ, तो संसार को क्या मुँह दिखाऊँगा। भाग्य में जो लिखा है, वह पूरा होकर रहेगा। उसे कौन टाल सकता है ?

लक्ष्मण—भाई साहब ! भाग्य की आड़ वे लोग लेते हैं जिनमें पराक्रम और साहस नहीं होता। आप क्यों भाग्य की आड़ लें ? आपके भौंहों के एक संकेत पर सारी अयोध्या में तूफान आ जायगा। भाग्य साहस का दास है, उसका राजा नहीं ! यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं इस धनुष और बाण के बल से भाग्य को आपके चरणों पर गिरा दूँ। फिर आपसे महाराज ने अपनी जिह्वा से तो कुछ कहा नहीं। क्या यह संभव नहीं कि रानी कैकेयी ने अपनी ओर से यह षड्यन्त्र खड़ा किया हो ?

रानी कौशिल्या ने आँसू पोंछते हुए कहा—बेटा ! मुझे इस बात की तो सच्ची खुशी है कि तुम अपने योग्यतम पिता की आज्ञा मानने के लिए अपने जीवन की बलि देने को तैयार हो, किन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मण का विचार ठीक है। कैकेयी ने अपनी ओर से यह छल रचा है।

रामचन्द्र ने आदर के साथ कहा—माताजी, पिताजी वहीं मौजूद थे। यदि रानी कैकेयी ने उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई बात कही होती, तो क्या वह कुछ आपत्ति न करते। नहीं माताजी, धर्म से मुँह मोड़ने

के लिए हीले ढूँढ़ना मैं धर्म के विरुद्ध समझता हूँ। कैकेयी ने जो कुछ कहा है, पिताजी की स्वीकृति से कहा है। मैं उनकी आज्ञा को किसी प्रकार नहीं टाल सकता। आप मुझे अब जाने की अनुमति दें। यदि जीवित रहा तो फिर आपके चरणों की धूलि लूँगा।

कौशिल्या ने रामचंद्र का हाथ पकड़ लिया और बोलीं—बेटा! आखिर मेरा भी तो तुम्हारे ऊपर कुछ अधिकार है? यदि राजा ने तुम्हें वनवास की आज्ञा दी है, तो मैं तुम्हें इस आज्ञा को मानने से रोकती हूँ। यदि तुम मेरा कहना न मानोगे, तो मैं अन्न-जल त्याग दूँगी, और तुम्हारे ऊपर माता की हत्या का पाप लगेगा।

रामचंद्र ने एक ठण्डी साँस खींचकर कहा—माताजी! मुझे कर्तव्य के सीधे रास्ते से न हटाइये, अन्यथा जहाँ मुझ पर धर्म को तोड़ने का पाप लगेगा, वहाँ आप भी इस पाप से न बच सकेंगी। मैं वन और पर्वत चाहे जहाँ रहूँ, मेरी आत्मा सदा आपके चरणों के पास उपस्थित रहेगी। आपका प्रेम बहुत रुलायेगा, आपकी प्रेममयी मूर्ति देखने के लिए आँखें बहुत रोयेंगी, पर वनवास में यह कष्ट न होते तो भाग्य मुझे वहाँ ले ही क्यों जाता। कोई लाख कहे, पर मैं इस विचार को दूर नहीं कर सकता कि भाग्य ही मुझे यह खेल खिला रहा है। अन्यथा क्या कैकेयी-सी देवी मुझे वनवास देती!

लक्ष्मण बोले—कैकेयी को आप देवी कहें, मैं नहीं कह सकता!

रामचंद्र ने लक्ष्मण की ओर अप्रसन्नता के भाव से देखकर कहा—लक्ष्मण, मैं जानता हूँ कि तुम्हें मेरे वनवास से बहुत दुःख हो रहा है; किन्तु मैं तुम्हारे मुँह से माता कैकेयी के विषय में कोई अनादर की बात नहीं सुन सकता। कैकेयी हमारी माता हैं। तुम्हें उनका सम्मान करना चाहिये। मैं इसलिए वनवास नहीं ले रहा हूँ कि यह कैकेयी की इच्छा है, किन्तु इसलिए कि यदि मैं न जाऊँ, तो महाराज का वचन झूठा होता है। दो-चार दिन में भरत आ जायँगे, जैसा मुझसे प्रेम करते हो, वैसे ही उनसे प्रेम करना। अपने वचन या कर्म से यह कदापि

न दिखाना कि तुम उनके अहित की इच्छा रखते हो; बार-बार मेरी चर्चा भी न करना, अन्यथा शायद भरत को बुरा लगे।

लक्ष्मण ने क्रोध से लाल होकर कहा—भैया, बार-बार भरत का नाम न लीजिये। उनके नाम ही से मेरे शरीर में आग लग जाती है। किसी प्रकार क्रोध को रोकना चाहता हूँ, किन्तु अधिकार को यों मिटते देखकर हृदय वश से बाहर हो जाता है। भरत का राज्य पर कोई अधिकार नहीं। राज्य आपका है और मेरे जीते-जी कोई आपसे उसे नहीं छीन सकता। क्षत्रिय अपने अधिकार के लिए लड़कर मर जाता है। मैं रक्त की नदी बहा दूँगा।

लक्ष्मण का क्रोध बढ़ते देखकर राम ने कहा—लक्ष्मण, होश में आओ। यह क्रोध और युद्ध का समय नहीं है। यह महाराजा दशरथ के वचन को निभाने की बात है। मैं इस कर्तव्य को किसी भी दशा में नहीं तोड़ सकता। मेरा वन जाना निश्चित है। कर्तव्य के मुकाबले में शारीरिक सुख का कोई मूल्य नहीं।

लक्ष्मण को जब ज्ञात हो गया कि रामचंद्र ने जो निश्चय किया है, उससे टल नहीं सकते तो बोले—अगर आपका यही निर्णय है, तो मुझे भी साथ लेते चलिये। आपके बिना मैं यहाँ एक दिन भी रह नहीं सकता। जब आप वन में घूमेंगे तो मैं इस महल में क्योंकर रह सकूँगा। आपके बिना यह राज्य मुझे श्मशान-सा लगेगा। जबसे मैंने होश सँभाला, कभी आपके चरणों से विलग नहीं हुआ। अब भी उनसे लिपटा रहूँगा।

रामचंद्र ने लक्ष्मण को प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखा। छोटे भाई को मुझसे कितना प्रेम है! मेरे लिए जीवन के सारे सुख और आनन्द पर लात मारने के लिए तैयार है। बोले—नहीं लक्ष्मण, इस विचार को त्याग दो। भला सोचो तो, जब तुम भी मेरे साथ चले जाओगे, तो माता सुमित्रा और कौशिल्या किसका मुँह देखकर रहेंगी? कौन उनके दुःख के बोझ को हलका करेगा? भरत के राजा होने पर रानी कैकेयी सफ़ेद और काले की मालिक होंगी। संभव है, वह हमारी माताओं को

किसी प्रकार का कष्ट दें। उस समय कौन उनकी सहायता करेगा? नहीं, तुम्हारा मेरे साथ चलना उचित नहीं।

लक्ष्मण—नहीं भाई साहब! मैं आपके बिना किसी प्रकार नहीं रह सकता। भरत की ओर से इस प्रकार का भय नहीं हो सकता। वह इतना डरपोक और नीच नहीं हो सकता। रघु के वंश में ऐसा मनुष्य पैदा ही नहीं हो सकता। आपका साथ मैं किसी तरह नहीं छोड़ सकता।

रामचन्द्र ने बहुत समझाया, किन्तु जब लक्ष्मण किसी तरह न माने तो उन्होंने कहा—अच्छा, यदि तुम नहीं मानते तो मैं तुम्हारे साथ अत्याचार नहीं कर सकता। किंतु पहले जाकर माता सुमित्रा से पूछ आओ।

लक्ष्मण ने जब सुमित्रा से वन जाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने उसे हृदय से लगाकर कहा—शौक़ से वन जाओ बेटा! मैं तुम्हें खुशी से आज्ञा देती हूँ। दुःख में भाई ही भाई के काम आता है। राम से तुम्हें जितना प्रेम है, उसकी माँग यही है कि तुम इस कठिन समय में उनका साथ दो। मैं सदा तुम्हें अशीर्वाद देती रहूँगी।

इसी समय में सीताजी को भी रामचन्द्र के वनवास का समाचार मिला। वह अच्छे-अच्छे आभूषणों से सज्जित होकर राजतिलक के लिए तैयार थीं। एकाएक यह दुःखद समाचार मिला और मालूम हुआ कि राम अकेले जाना चाहते हैं, तो दौड़ी हुई आकर उनके चरणों पर गिर पड़ीं और बोली—स्वामी, आप वन जाते हैं तो मैं यहाँ अकेले कैसे रहूँगी। मुझे भी साथ चलने की अनुमति दीजिये। आपके बिना मुझे यह महल फाड़ खायगा, फूलों की सेज काँटों की तरह गड़ेगी। आपके साथ जंगल भी मेरे लिए बाग़ है, आपके बिना बाग़ भी जंगल है।

कौशिल्या ने सीता को गले से लगाकर कहा—बेटी! तुम भी चली जाओगी, तो मैं किसका मुँह देखकर जिऊँगी। फिर तो घर ही सूना हो जायगा। सोचती थी कि तुम्हीं को देखकर मन में संतोष करूँगी। किन्तु अब तुम भी वन जाने को प्रस्तुत हो। ईश्वर! अब और कौन-सा दुःख दिखाना चाहते हो? क्यों इस अभागिन को नहीं उठा लेते?

रामचन्द्र को यह विचार भी न हुआ था कि सीताजी उनके साथ चलने को तैयार होंगी। समझाते हुए बोले—सीता, इस विचार का त्याग कर दो। जंगल में बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ हैं। पग-पग पर जन्तुओं का भय, जंगल के डरावने आदमियों से वास्ता, रास्ता काँटों और कंकड़ों से भरा हुआ—भला तुम्हारा कोमल शरीर यह कठिनाइयाँ कैसे झेल सकेगा? पत्थर की चट्टानों पर तुम कैसे सोओगी? पहाड़ों का पानी ऐसा खराब होता है कि तरह-तरह की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। तुम इन तक़लीफ़ों को कैसे बर्दाश्त कर सकोगी?

सीता आँखों में आँसू भरकर बोलीं—स्वामी! जब आप मेरे साथ होंगे तो मुझे किसी बात का भय न होगा। वह खुशी सारी तकलीफ़ों को मिटा देगी। यह कैसे हो सकता है कि आप जंगलों में तरह-तरह की कठिनाइयाँ झेलें और मैं राजमहल में आराम से सोऊँ। स्त्री का धर्म अपने पति का साथ देना है, वह दुःख और सुख हर दशा में उसकी संगिनी रहती है। यही उसका सबसे बड़ा कर्तव्य है।

यदि आप सैर और मनबहलाव के लिए जाते होते, तो मैं आपके साथ जाने के लिए अधिक आग्रह न करती। किंतु यह जानकर कि आपको हर तरह का कष्ट होगा, मैं किसी तरह नहीं रुक सकती। मैं आपके रास्ते से काँटे चुनूँगी, आपके लिए घास और पत्तों की सेज बनाऊँगी, आप सोयेंगे, तो आपको पंखा झलूँगी। इससे बढ़कर किसी स्त्री को और क्या सुख हो सकता है।

रामचंद्र निरुत्तर हो गये। उसी समय तीनों आदमियों ने राजसी पोशाक उतार दिये और भिक्षुकों का-सा सादा कपड़ा पहनकर कौशिल्या से आकर बोले—माताजी! अब हमको चलने की अनुमति दीजिये।

कौशल्या फूट-फूटकर रोने लगीं। बेटा, किस मुँह से जाने को कहूँ। मन को किसी प्रकार संतोष नहीं होता। धर्म का प्रश्न है, रोक भी नहीं सकती। जाओ। मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा। जिस तरह पीठ दिखाते हो, उसी तरह मुँह भी दिखाना। यह कहते-कहते कौशिल्या

रानी दुःख से मूर्च्छा खाकर गिर पड़ीं। यहाँ से तीनों आदमी सुमित्रा के पास गये और उनके चरणों पर सिर झुकाकर रानी कैकेयी के कोप-भवन में महाराजा दशरथ से बिदा होने गये। राजा मृतक शरीर के समान निष्प्राण और निस्पंद पड़े थे। तीनों आदमियों ने बारी-बारी से उनके चरणों पर सिर झुकाया। तब राम बोले—महाराज! मैं तो अकेला ही जाना चाहता था, किंतु लक्ष्मण और जानकी किसी प्रकार मेरा साथ नहीं छोड़ते, इसलिए इन्हें भी लिये जाता हूँ। हमें आशीर्वाद दीजिये।

यह कहकर जब तीनों आदमी वहाँ से चले तो राजा दशरथ ने जोर से रोकर कहा—हाय राम! तुम कहाँ चले! उन पर एक पागल-पन की-सी दशा आ गई। भले और बुरे का विचार न रहा। दौड़े कि राम को पकड़कर रोक लें, किंतु मूच्छा खाकर गिर पड़े। रात ही भर में उनकी दशा ऐसी ख़राब हो गई थी कि मानो बरसों के रोगी हैं।

अयोध्या में यह ख़बर मशहूर हो गई थी। लाखों आदमी राजभवन के दरवाज़ों पर एकत्रित हो गये थे। जब ये तीनों आदमी भिक्षुकों के वेष में रनिवास से निकले तो सारी प्रजा फूट-फूटकर रोने लगी। सब हाथ जोड़-जोड़कर कहते थे, महाराज! आप न जायँ। हम चलकर महारानी कैकेयी के चरणों पर सिर झुकायेंगे, महाराज से प्रार्थना करेंगे। आप न जायँ। हाय! अब हमें कौन पालेगा, कौन हमारे साथ हमदर्दी करेगा, हम किससे अपना दुःख कहेंगे, कौन हमारी सुनेगा, हम तो कहीं के न रहे!

रामचन्द्र ने सबको समझाकर कहा—दुःख में धैर्य के सिवा और कोई चारा नहीं। यही आपसे मेरी विनती है। मैं सदा आप लोगों को याद करता रहूँगा।

राजा ने सुमंत्र को पहले ही से बुलाकर कह दिया था कि जिस प्रकार हो सके, राम, सीता और लक्ष्मण को वापस लाना।

सुमंत्र रथ तैयार किये खड़ा था। रामचन्द्र ने पहले सीताजी को रथ पर बिठाया, फिर दोनों भाई बैठे और सुमंत्र को रथ चलाने का

आदेश दिया। हजारों आदमी रथ के पीछे दौड़े और बहुत समझाने पर भी रथ का पीछा न छोड़ा। आखिर शाम को जब लोग तमसा नदी के किनारे पहुँचे, तो राम ने उन्हें दिलासा दिलाकर बिदा किया।

इधर अयोध्या में कुहराम मचा हुआ था। मालूम होता था, सारा शहर उजाड़ हो गया है। जहाँ कल सारा शहर दीपकों से जगमगा रहा था, वहाँ आज अँधेरा छाया हुआ था। सुबह जहाँ मंगल-गीत हो रहे थे, वहाँ इस समय हर घर से रोने की आवाज़ें आती थीं। दूकाने बन्द थीं। जहाँ दो आदमी मिल जाते, यही चर्चा होने लगती। बेटा हो तो ऐसा हो! पिता की आज्ञा पाते ही राज-पाट पर लात मार दी। संसार में ऐसा कौन होगा। बड़े-बड़े राजा एक बालिश्त जमीन के लिए लड़ते मरते हैं। भाई भी हो तो ऐसा हो। सबसे अधिक प्रशंसा सीताजी की हो रही थी। पुरुषों के लिए जंगल की कठिनाइयाँ सहना कोई असाधारण बात नहीं, स्त्री के लिए असाधारण बात थी। सती स्त्रियाँ ऐसी होती हैं। जिसने कभी पृथ्वी पर पाँव नहीं रखा, वह जंगल में चलने के लिए तैयार हो गई। सच है, कुसमय में ही स्त्री और मित्र की परख होती है।

उधर रनिवास शोकगृह बना हुआ था। किसी को तन-बदन की सुध न थी।

राजा दशरथ की मृत्यु

तमसा नदी को पार करके पहर रात जाते-जाते रामचन्द्र गंगा के किनारे जा पहुँचे। वहाँ भील सरदार गुह का राज्य था। रामचन्द्र के आने का समाचार पाते ही उसने आकर प्रणाम किया। रामचन्द्र ने उसकी नीच जाति की तनिक भी चिन्ता न करके उसे हृदय से लगा लिया और कुशल-क्षेम पूछा। गुह सरदार बाग़-बाग़ हो गया—कोशल के राजकुमार ने उसे हृदय से लगा लिया। इतना बड़ा सम्मान उसके वंश में और किसी को न मिला था। हाथ जोड़कर बोला—आप इस निर्धन की कुटिया को अपने चरणों से पवित्र कीजिये। इस घर के भी

भाग्य जागें। जब मैं आपका सेवक यहाँ उपस्थित हूँ तो आप यहाँ क्यों कष्ट उठायेंगे।

रामचन्द्र ने गुह का निमन्त्रण स्वीकार न किया। जिसे वनवास की आज्ञा मिली हो, वह नगर में किस प्रकार रहता। वहीं एक पेड़ के नीचे रात बिताई। दूसरे दिन प्रातःकाल रामचन्द्र ने सुमन्त्र से कहा—अब तुम लौट जाओ, हम लोग यहाँ से पैदल जायँगे। माताजी से कह देना कि हम लोग कुशल से हैं, घबराने की कोई बात नहीं।

सुमन्त्र ने रोकर कहा—महाराज दशरथ ने तो मुझे आप लोगों को वापस लाने का आदेश दिया था। खाली रथ देखकर उनकी क्या दशा होगी। राम ने सुमन्त्र को समझा-बुझाकर बिदा किया। सुमन्त्र रोते हुए अयोध्या लौटे। किन्तु जब वह नगर के निकट पहुँचे तो दिन बहुत शेष था। उन्हें भय हुआ कि यदि इसी समय अयोध्या चला जाऊँगा तो नगर के लोग हजारों प्रश्न पूछ-पूछकर परेशान कर देंगे। इसलिए वह नगर के बाहर रुके रहे। जब संध्या हुई तो अयोध्या में प्रविष्ट हुए।

इधर राजा दशरथ इस प्रतीक्षा में बैठे थे कि शायद सुमन्त्र राम को लौटा लाये। आशा का इतना सहारा शेष था। कैकेयी से रुष्ट होकर वह कौशिल्या के महल में चले गये थे और बार-बार पूछ रहे थे कि सुमन्त्र अभी लौटा या नहीं। दीपक जल गये, अभी सुमन्त्र नहीं आया। महाराज की विकलता बढ़ने लगी। आखिर सुमन्त्र राजमहल में प्रविष्ट हुए। दशरथ उन्हें आते देखकर दौड़े और द्वार पर आकर पूछा—राम कहाँ हैं? क्या उन्हें वापस नहीं लाये? सुमन्त्र कुछ बोल न सके, पर उनका चेहरा देखकर महाराज की अन्तिम आशा का तार भी टूट गया। वह वहीं मूर्च्छा खाकर गिर पड़े और हाय राम! हाय राम! कहते हुए संसार से बिदा हो गये। मरने से पहले उन्हें उस अन्धे तपस्वी की याद आई जिसके बेटे को आज से बहुत दिन पहले उन्होंने मार डाला था। वह जिस प्रकार बेटे के लिए तड़प-तड़पकर मर गया, उसी प्रकार महाराज दशरथ भी लड़कों के वियोग में तड़प-कर परलोक सिधारे। उनके शाप ने आज प्रभाव दिखाया।

रानिवास में शोक छा गया। कौशिल्या महाराज के मृत शरीर को गोद में लेकर विलाप करने लगीं। उसी समय कैकेयी भी आ गई। कौशिल्या उसे देखते ही क्रोध से बोली—अब तो तुम्हारा कलेजा ठंढा हुआ। अब खुशियाँ मनाओ। अयोध्या के राज का सुख लूटो। यही चाहती थीं न ? लो कामनाएँ फलीभूत हुईं। अब कोई तुम्हारे राज में हस्तक्षेप करनेवाला नहीं रहा। मैं भी कुछ घड़ियों की मेहमान हूँ; लड़का और बहू पहले ही चले गये। अब स्वामी ने भी साथ छोड़ दिया। जीवन में मेरे लिए क्या रखा है। पति के साथ सती हो जाऊँगी।

कैकेयी चित्र-लिखित-सी खड़ी रही। दासियों ने कौशिल्या की गोद से महाराज का मृत शरीर अलग किया और कौशिल्या को दूसरी जगह ले जाकर आश्वासन देने लगीं। दरबार के धनी-मानियों को ज्योंही खबर लगी, सब-के-सब घबराये हुए आये और रानियों को धैर्य बंधाने लगे। इसके उपरान्त महाराज के मृत शरीर को तेल में डुबाया गया जिसमें सड़ न जाय और भरत को बुलाने के लिए एक विश्वासी दूत प्रेषित किया गया। उनके अतिरिक्त अब क्रिया-कर्म और कौन करता ?

भरत की वापसी

जिस दिन महाराज दशरथ की मृत्यु हुई उसी दिन रात को भरत ने कई डरावने स्वप्न देखे। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि ऐसे बुरे स्वप्न क्यों दिखाई दे रहे हैं। न जाने लोग अयोध्या में कुशल से हैं या नहीं। नाना से जाने की अनुमति मांगी, पर उन्होंने दो-चार दिन और रहने के लिए आग्रह किया। आखिर जल्दी क्या है। काश्मीर की खूब सैर कर लो, तब जाना। अयोध्या में यह हृदय को हरनेवाले प्राकृतिक सौन्दर्य कहाँ मिलेगा। विवश होकर भरत को रुकना पड़ा। इसके तीसरे दिन दूत पहुँचा। उसे भली प्रकार चेता दिया गया था कि भरत से अयोध्या की दशा का वर्णन न करना, इसलिए जब भरत ने दूत से

पूछा—क्यों भाई, अयोध्या में सब कुशल है न ? तो उसने कोई साफ़ जवाब न देकर व्यंग से कहा—आप जिनकी कुशल पूछते हैं, वे कुशल से हैं। दूत भी हृदय से भरत से असन्तुष्ट था।

भरतजी को क्या खबर कि दूत इस एक वाक्य में क्या कह गया। उन्होंने नाना और मामा से आज्ञा ली और उसी दिन शत्रुघ्न के साथ अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। रथ के घोड़े हवा से बातें करनेवाले थे। तीसरे ही दिन वह अयोध्या में प्रविष्ट हुए। किन्तु, यह नगर पर उदासी क्यों छाई हुई है ? नगर श्री-हीन-सा क्यों हो रहा है ? गलियों में धूल क्यों उड़ रही है ? बाज़ारें क्यों बन्द हैं ? रास्ते में जो भरत को देखता था, बिना इनसे कुछ बात-चीत किये, बिना कुशल-क्षेम पूछे या प्रणाम किये कतराकर निकल जाता था। उनके आगे बढ़ आने पर लोग कानाफूसी करने लगते थे। भरत की समझ में कुछ न आता था कि भेद क्या है। कोई उनकी ओर आकृष्ट भी न होता था कि उससे कुछ पूछें। राजमहल तक पहुँचना उनके लिए कठिन हो गया। राज-महल पहुँचे तो उसकी दशा और भी हीन थी। मालूम होता था कि उसकी जान निकल गई है, केवल मृत शरीर शेष है। खिन्नता विराज रही थी। कई दिन से दरवाज़े पर झाड़ू तक न दी गई थी। दो-चार सन्तरी के चपरासी खड़े जम्हाइयाँ ले रहे थे। वह भी भरत को देख-कर एक कोने में दबक गये, जैसे उनकी सूरत भी नहीं देखना चाहते।

द्वार पर पहुँचते ही भरत और शत्रुघ्न ने रथ से कूदकर अन्दर प्रवेश किया। महाराज अपने कमरे में न थे। भरत ने समझा, अवश्य कैकेयी माता के प्रासाद में होंगे। वह प्रायः कैकेयी ही के प्रासाद में रहते थे। लपके हुए माता के पास गये। महाराज का वहाँ भी पता न था। कैकेयी विधवाओं के-से वस्त्र पहने खड़ी थी। भरत को देखते ही वह फूली न समाई। आकर भरत को गले से लगा लिया और बोली—जीते रहो बेटा ! रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

भरत ने माता की ओर आश्चर्य से देखकर कहा—जी नहीं, बड़े आराम से आया। महाराज कहाँ हैं ? तनिक उन्हें प्रणाम तो कर लूँ।

कैकेयी ने ठण्ढी आह खींचकर कहा—बेटा, उनकी बात क्या पूछते हो। उन्हें परलोक सिधारे तो आज एक सप्ताह हो गया। क्या तुमसे अभी तक किसी ने नहीं कहा ?

भरत के सिर पर जैसे शोक का पहाड़ टूट पड़ा। सिर में चक्कर-सा आने लगा। वह खड़े न रह सके। भूमि पर बैठकर रोने लगे। जब तनिक जी सँभला तो बोले—उन्हें क्या हुआ था माताजी ? क्या बीमारी थी ? हाय ! मुझ अभागे को उनके अन्तिम दर्शन भी प्राप्त न हुए।

कैकेयी ने सिर झुकाकर कहा—बीमारी तो कुछ नहीं थी बेटा। राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास के शोक से उनकी मृत्यु हुई। राम पर तो वह जान देते थे।

भरत की रही-सही जान भी नहों में समा गई। सिर पीटकर बोले—भाई रामचन्द्र ने ऐसा कौन-सा पाप किया था माताजी कि उनको वनवास का दण्ड दिया गया ? क्या उन्होंने किसी ब्राह्मण की हत्या की थी या किसी पर-स्त्री पर बुरी दृष्टि डाली थी ? धर्म के अवतार रामचन्द्र को देश-निकाला क्यों हुआ ?

कैकेयी ने सारी कथा खूब विस्तार से वर्णन की और मन्थरा को खूब सराहा। जो कुछ हुआ उसी की सहायता से हुआ। यदि उसकी सहायता न होती तो मेरे किये कुछ न हो सकता और रामचन्द्र का राजतिलक हो जाता। फिर तुम और मैं कहीं के न रहते। दासों की भाँति जीवन व्यतीत करना पड़ता। इसी ने मुझे राजा के दिये हुए दो वरदानों की याद दिलाई और मैंने दोनों वरदान पूरे कराये। पहला था रामचन्द्र का वनवास—वह तो पूरा हो गया। अकेले राम ही नहीं गये, लक्ष्मण और सीता भी उनके साथ गये। दूसरा वरदान शेष है। वह कल पूरा हो जायगा। तुम्हें सिंहासन मिलेगा।

कैकेयी ने दिल में समझा था कि उसकी कार्यपटुता का वर्णन सुनकर भरत उसके बहुत कृतज्ञ होंगे, पर बात कुछ और ही हुई। भरत की त्योरियों पर बल पड़ गये और आँखें क्रोध से लाल हो गईं।

कैकेयी की ओर घृणापूर्वक नेत्रों से देखकर बोले—माता! तुमने मुझे संसार में कहीं मुँह दिखाने के योग्य न रखा। तुमने जो काम मेरी भलाई के लिए किया वह मेरे नाम पर सदा के लिए काला धब्बा लगा देगा। दुनिया यही कहेगी कि इस मामले में भरत का अवश्य षड्यन्त्र होगा। अब मेरी समझ में आया कि क्यों अयोध्या के लोग मुझे देखकर मुँह फेर लेते थे; यहाँ तक कि द्वारपालों ने भी मेरी ओर ध्यान देना उचित न समझा। क्या तुमने मुझे इतना नीच समझ लिया कि मैं रामचन्द्र का अधिकार छीनकर प्रसन्नता से राज करूँगा? रघुकुल में ऐसा कभी नहीं हुआ। इस वंश का सदा से यही सिद्धान्त रहा है कि बड़ा लड़का गद्दी पर बैठे। क्या यह बात तुम्हें ज्ञात न थी? हाय! तुमने रामचन्द्र जैसे देवता-तुल्य पुरुष को वनवास दिया, जिसके जूतों का बन्धन खोलने योग्य भी मैं नहीं। माता, मुझे तुम्हारा आदर करना चाहिये, किन्तु जब तुम्हारे कार्यों को देखता हूँ तो अपने आप कड़े शब्द मुँह से निकल आते हैं। तुमने इस वंश को मटियामेट कर दिया। हरिश्चन्द्र और मान्धाता के वंश की प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। तुम्हीं ने मेरे सत्यवादी पिता की जान ली। तुम हत्यारिनी हो। यह राज-पाट तुम्हें शुभ हो। भरत इसकी ओर आँख उठाकर भी न देखेगा।

यह कहते हुए भरत रानी कौशिल्या के पास गये और उनके चरणों पर सिर रख दिया। कौशिल्या को क्या मालूम था कि उसी समय भरत कैकेयी को कितना भला-बुरा कह आये हैं। बोलीं—तुम आ गये, बेटा! लो, तुम्हारी माता की आशाएँ पूर्ण हुईं। तुम उन्हें लेकर आनन्द से राज्य करो। मुझे राम के पास पहुँचा दो। मैं अब यहाँ रहकर क्या करूँगी।

ये शब्द भरत के सीने में तीर के समान लगे। आह! माता कौशिल्या भी मेरी ओर से असन्तुष्ट हैं! रोते हुए बोले—माताजी, मैं आपसे सच कहता हूँ कि यहाँ जो कुछ हुआ है उसका मुझे लेश-मात्र भी ज्ञान न था। माता कैकेयी ने जो कुछ किया, उसका फल उनके आगे आयेगा। मैं उन्हें क्या कहूँ। किन्तु मैं इसका विश्वास

दिलाता हूँ कि मैं राज्य न करूँगा। राज्य रामचन्द्र का है और वही इसके स्वामी हैं, मैं तो उनका सेवक हूँ। मैं क्रिया-कर्म से निवृत्त होते ही जाकर रामचन्द्र को मना लाऊँगा। मुझे आशा है कि वे मेरी विनती मान जायँगे। मैंने पूर्व जन्म में न जाने ऐसे कौन-से पाप किये थे कि यह कलंक मेरे माथे पर लगा। मुझसे अधिक भाग्यहीन संसार में और कौन होगा जिसके कारण पिताजी की मृत्यु हुई, रामचन्द्र वन गये और सारे देश में जगहँसाई हुई।

देवी कौशिल्या के हृदय से सारा मालिन्य दूर हो गया। उन्होंने भरत को हृदय से लगा लिया और रोने लगीं।

मन्थरा उस समय किसी काम से बाहर गई हुई थी। उसे ज्योंही ज्ञात हुआ कि भरत आये हैं, उसने सिर से पाँव तक गहने पहने, एक रेशमी साड़ी धारण की और छम्-छम् करती, कूबड़ हिलाती अपनी आदर्श सेवाओं का पुरस्कार लेने के लिए आकर भरत के सामने खड़ी हो गई। भरत ने तो उसे देखकर मुँह फेर लिया, किन्तु शत्रुघ्न अपने क्रोध को न रोक सके। उन्होंने लपककर मन्थरा के बाल पकड़ लिए और कई लात और घूसे जमाये। मन्थरा हाय! हाय! करने लगी और महारानी कैकेयी की दुहाई देने लगी। अन्त में भरत ने उसे शत्रुघ्न के हाथ से छुड़ाया और वहाँ से भगा दिया।

जब भरत महाराजा दशरथ के क्रिया-कर्म से निवृत्त हुए तो गुरु वशिष्ठ, नगर के धनी-मानी, दरबार के सभासदों ने उन्हें गद्दी पर बिठाना चाहा; किन्तु भरत किसी तरह तैयार न हुए। बोले—आप लोग ऐसा काम करने के लिए मुझे विवश न करें जो मेरा लोक और परलोक दोनों मिट्टी में मिला देगा। भाई रामचन्द्र के रहते यह असम्भव है कि मैं राज्य का विचार भी मन में लाऊँ। मैं उन्हें जाकर मना लाऊँगा और यदि वह न आयेंगे तो मैं भी घर से निकल जाऊँगा। यही मेरा अन्तिम निर्णय है।

लोगों के दिल भरत की ओर से साफ़ हो गये। सब उनकी नेक-नीयती की प्रशंसा करने लगे। यह बड़े बाप का सपूत बेटा है। भाई

हा तो ऐसा हो। क्यों न हो, ऐसे नेक और धर्मात्मा लोग न होते तो संसार कैसे स्थिर रहता।

दूसरे दिन भरत अपनी तीनों माताओं को लेकर राम को मनाने चले। गुरु वशिष्ठ और नगर के विशिष्ट जन उनके साथ-साथ चले।

चित्रकूट

राम, लक्ष्मण और सीता गंगा नदी पार करके चले जा रहे थे। अनजान रास्ता, दोनों ओर घने जंगल, बस्ती का कहीं पता नहीं। इस प्रकार वे प्रयाग पहुँचे। प्रयाग में भारद्वाज मुनि का आश्रम था। तीनों आदमियों ने त्रिवेणी में स्नान करके भारद्वाज के आश्रम में विश्राम किया और रात को उनके उपदेश सुनकर प्रातः उनके परामर्श से चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। कुछ दूर चलने के बाद जमुना नदी मिली। उस समय वह भाग बहुत आबाद न था। यमुना को पार करने के लिए कोई नाव न मिल सकी। अब क्या हो? अन्त में लक्ष्मण को एक उपाय सूझा। उन्होंने इधर-उधर से लकड़ी की टहनियाँ जमा कीं और उन्हें छाल के रेशों से बाँधकर एक तख्ता-सा बना लिया। इस तख्ते पर हरी-हरी पत्तियाँ बिछा दीं। और उसे पानी में डाल दिया। इस पर तीनों आदमी बैठ गये। लक्ष्मण ने इस तख्ते को खेकर दम के दम में यमुना नदी पार कर ली।

नदी के उस पार पहाड़ी ज़मीन थी। पहाड़ियाँ हरी-हरी झाड़ियों से लहरा रही थीं। पेड़ों पर मोर, तोते इत्यादि पक्षी चहक रहे थे। हिरनों के झुण्ड घाटियों में चरते दिखाई देते थे। हवा इतनी स्वच्छ और स्वास्थ्य-कारक थी कि आत्मा को ताज़गी मिल रही थी। इस हृदयग्राही दृश्य का आनन्द उठाते तीनों आदमी चित्रकूट जा पहुँचे। वाल्मीकि ऋषि का आश्रम वहीं एक पहाड़ी पर था। तीनों आदमियों ने पहले उनका दर्शन उचित समझकर उनके आश्रम की ओर प्रस्थान किया। वाल्मीकि ने उन्हें देखा तो बड़े तपाक से गले लगा लिया और रास्ते का कुशल-समाचार पूछा। उन्होंने योग के बल से उनके चित्रकूट

आने का कारण जान लिया था। बतलाने की आवश्यकता न पड़ी। बोले—आप लोग खूब आये। आपको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आप लोगों पर जो कुछ बीती है, वह मुझे मालूम है। जीवन सुख और दु:ख के मेल का ही नाम है। मनुष्य को चाहिये कि धैर्य से काम ले।

राम ने कहा—आशीर्वाद दीजिये कि हमारे वनवास के दिन कुशल से बीतें।

वाल्मीकि ने उत्तर दिया—राजकुमार, मेरे एक-एक रोम से तुम्हारे लिए आशीर्वाद निकल रहा है। तुमने जिस त्याग से काम लिया है, उसका उदाहरण इतिहास में कहीं नहीं मिलता। धन्य है वह माता, जिसने तुम-जैसा सपूत पैदा किया। चित्रकूट तुम्हारे लिए बहुत उत्तम स्थान है। हमारी कुटी में पर्याप्त स्थान है। हम सब आराम से रहेंगे।

रामचन्द्र को भी चित्रकूट बहुत पसन्द आया। वहीं रहने का निश्चय किया। किन्तु यह उचित न समझा कि ऋषि वाल्मीकि के छोटे-से आश्रम में रहें। इनके रहने से ऋषि को अवश्य कष्ट होगा, चाहे वह संकोच के कारण मुँह से कुछ न कहें। अलग एक कुटी बनाने का विचार हुआ। लक्ष्मण को आज्ञा मिलने की देर था। जंगल से लकड़ी काट लाये और शाम तक एक सुन्दर आरामदेह कुटी तैयार कर दी। इसमें खिड़कियाँ भी थीं, दरवाजा भी था, ताक़ भी थे, सोने के अलग-अलग कमरे भी थे। राम ने यह कुटी देखी तो बहुत प्रसन्न हुए। गृह-प्रवेश की रीति के अनुसार देवताओं की पूजा की और कुटी में रहने लगे।

भरत और रामचन्द्र

इधर भरत अयोध्यावासियों के साथ राम को मनाने के लिए जा रहे थे। जब वह गंगा नदी के किनारे पहुँचे, तो भील सरदार गुह को उनकी सेना देखकर सन्देह हुआ कि शायद यह रामचन्द्र पर आक्रमण करने जा रहे हैं। तुरन्त अपने आदमियों को एकत्रित करने लगा। किन्तु बाद को जब भरत का विचार ज्ञात हुआ तो उनके सामने आया।

और अपने घर चलने का निमन्त्रण दिया। भरत ने कहा—जब रामचन्द्र ने बस्ती के बाहर पेड़ के नीचे रात बिताई, तो मैं बस्ती में कैसे जाऊँ। बताओ, सीता और रामचन्द्र कहाँ सोये थे। जब गुह ने उन्हें वह जगह दिखाई, तो भरत अपने आप रो पड़े—हाय, वह जिन्हें महलों में नींद नहीं आती थी, आज भूमि पर पेड़ के नीचे सो रहे हैं। यह दिनों का फेर है। मुझ अभागे के कारण इन्हें यह सारे कष्ट हो रहे हैं। इन घास के कड़े टुकड़ों से कोमलांगी सीता का शरीर छिल गया होगा। रामचन्द्र को मच्छरों ने रात-भर कष्ट दिया होगा। नींद न आई होगी। लक्ष्मण ने जंगली जानवरों के भय से सारी रात पहरा देकर काटी होगी। और मैं अभी तक राजसी पोशाक पहने हूँ। मुझे हज़ार बार धिक्कार है!

यह कहकर भरत ने उसी समय राजसी पोशाक उतार फेंका और साधुओं का-सा वेष धारण किया। फिर उसी पेड़ के नीचे, उसी घास-फूस के बिछावन पर रात-भर पड़े रहे। उस दिन से चौदह साल तक भरत ने साधु जीवन व्यतीत किया।

दूसरे दिन भरत भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र चित्रकूट की ओर गये हैं। रात-भर वहाँ ठहरकर भरत सबेरे चित्रकूट रवाना हो गये।

सन्ध्या का समय था। रामचन्द्र और सीता एक चट्टान पर बैठे हुए सूर्यास्त का दृश्य देख रहे थे और लक्ष्मण तनिक दूर पर धनुष और बाण लिये खड़े थे।

सीता ने पेड़ों की ओर देखकर कहा—ऐसा प्रतीत होता है, इन पेड़ों ने सुनहरी चादर ओढ़ ली हो।

राम—पहाड़ियों की ऊदी रंग की ओस से लदी हुई चादर कितना सुन्दर मालूम होती है। प्रकृति सोने का सामान कर रही है।

सीता—नीचे की घाटियों ने काली चादर से मुँह ढाँक लिया।

राम—और पवनी को देखो, जैसे कोई नागिन लहराती हुई चली जाती हो।

सीता—केतकी के फूलों से कैसी सुगन्ध आ रही है।

लक्ष्मण खड़े-खड़े एकाएक चौंककर बोले—भैया, वह सामने धूल कैसी उड़ रही है? सारा आसमान धूल से भर गया।

राम—कोई चरवाहा भेड़ों का गल्ला लिये चला जाता होगा।

लक्ष्मण—नहीं भाई साहब, कोई सेना है। घोड़े साफ़ दिखाई दे रहे हैं। वह लो, रथ भी दिखाई देने लगे।

रामचन्द्र—शायद कोई राजकुमार आखेट के लिए निकला हो।

लक्ष्मण—सब के सब इधर ही चले आते हैं।

यह कहकर लक्ष्मण एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ गये, और भरत की सेना को ध्यान से देखने लगे। रामचन्द्र ने पूछा—कुछ साफ़ दिखाई देता है?

लक्ष्मण—जी हाँ, सब साफ़ दिखाई दे रहा है। आप धनुष और बाण लेकर तैयार हो जायँ। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि भरत सेना लेकर हमारे ऊपर आक्रमण करने चले आ रहे हैं। इन डालों के बीच से भरत के रथ की झण्डी साफ़ दिखाई दे रही है। भली प्रकार पहचानता हूँ, भरत ही का रथ है। वही सुरंग घोड़े हैं। उन्हें अयोध्या का राज्य पाकर अभी सन्तोष नहीं हुआ। आज सारे झगड़े का अन्त ही कर दूँगा!

रामचन्द्र—नहीं लक्ष्मण, भरत पर सन्देह न करो। भरत इतना स्वार्थी, इतना संकोचहीन नहीं है। मुझे विश्वास है कि वह हमें वापस ले चलने आ रहा है। भरत ने हमारे साथ कभी बुराई नहीं की।

लक्ष्मण—उन्हें बुराई करने का अवसर ही कब मिला, जो उन्होंने छोड़ दिया। आप अपने हृदय की तरह औरों का हृदय भी निर्मल समझते हैं। किन्तु मैं आपसे कहे देता हूँ कि भरत विश्वासघात करेंगे। वह यहाँ इसी उद्देश्य से आ रहे हैं कि हम लोगों को मारकर अपना रास्ता सदैव के लिए साफ़ कर लें।

रामचन्द्र—मुझे जीते-जी भरत की ओर से ऐसा विश्वास नहीं हो सकता। यदि तुम्हें भरत का राजगद्दी पर बैठना बुरा लगता हो, तो मैं

उनसे कहकर तुम्हें राज्य दिला सकता हूँ। मुझे विश्वास है कि भरत मेरा कहना न टालेंगे।

लक्ष्मण ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। रामचन्द्र का व्यंग उन्हें बुरा मालूम हुआ। पर मुँह से कुछ बोले नहीं। उधर भरत को ज्योंही ऋषियों की कुटियाँ दिखाई देने लगीं, वह रथ से उतर पड़े और नंगे पाँव रामचन्द्र से मिलने चले। शत्रुघ्न और सुमंत्र भी उनके साथ थे। कई कुटियों के बाद रामचन्द्र की कुटी दिखाई दी। रामचन्द्र कुटी के सामने एक पत्थर की चट्टान पर बैठे थे। उन्हें देखते ही भरत भैया! भैया! कहते हुए बच्चों की तरह रोते दौड़े और रामचन्द्र के पैरों पर गिर पड़े। रामचन्द्र ने भरत को उठाकर छाती से लगा लिया। शत्रुघ्न ने भी आगे बढ़कर रामचन्द्र के चरणों पर सिर झुकाया। चारो भाई गले मिले। इतने में कौशिल्या, सुमित्रा, कैकेयी भी पहुँच गईं। रामचन्द्र ने सबको प्रणाम किया। सीताजी ने भी सासों के पैरों को आँचल से छुआ। सासों ने उसे गले से लगाया। किन्तु किसी के मुँह से कोई शब्द न निकलता था। सबके गले भरे हुए थे और आँखों में आँसू भरे हुए थे। वनवासियों का यह साधुओं का-सा वेष देखकर सबका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। कैसी विवशता है। कौशिल्या सीता को देखकर अपने आप रो पड़ीं। वह बहू, जिसे वह पान की तरह फेरा करती थीं, भिखारिनी बनी हुई खड़ी है। समझाने लगीं--बेटी, अब भी मेरा कहा मानो। यहाँ तुम्हें बड़े-बड़े कष्ट होंगे। इतने ही दिनों में सूरत बदल गई है। बिलकुल पहचानी नहीं जातीं। मेरे साथ लौट चलो।

सीताजी ने कहा—अम्माजी, जब मेरे स्वामी वन-वन फिरते रहें, तो मुझे अयोध्या ही नहीं, स्वर्ग में भी सुख नहीं मिलेगा। स्त्री का धर्म पुरुष के साथ रहकर उसके दुःख-सुख में भाग लेना है। पुरुष को दुःख में छोड़कर जो स्त्री सुख की इच्छा करती है, वह अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ती है। पानी के बिना नदी की जो दशा होती है, वही दशा पति के बिना स्त्री की होती है।

कौशिल्या को सीता की बातों से प्रसन्नता भी हुई और दुःख भी

हुआ। दुःख तो यह हुआ कि यह सुख और ऐश्वर्य में पली हुई लड़की यों विपत्ति में जीवन के दिन काट रही है ; प्रसन्नता यह हुई कि उसके विचार इतने ऊँचे और पवित्र हैं। बोलीं—धन्य हो बेटी, इसी को स्त्री का पातिव्रत कहते हैं। यही स्त्री का धर्म है। ईश्वर तुम्हें सुखी रखे, और दूसरी स्त्रियों को भी तुम्हारे मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे। ऐसी देवियाँ मनुष्य के लिए गौरव का विषय होती हैं। उन्हीं के नाम पर लोग आदर से सिर झुकाते हैं। उन्हीं के यश घर-घर गाये जाते हैं।

चारो भाई जब गले मिल चुके, तो रामचन्द्र ने भरत से पूछा—कहो भैया, तुम कश्मीर से कब आये ? पिताजी तो कुशल से हैं ? तुम उनको छोड़कर व्यर्थ चले आये, वह अकेले बहुत घबरा रहे होंगे।

भरत की आँखों से टप्-टप् आँसू गिरने लगे। भर्राई हुई आवाज़ में बोले—भाई साहब, पिताजी तो अब इस संसार में नहीं हैं। जिस दिन सुमन्त्र रथ लेकर वापस हुए, उसी रात को वह परलोक सिधारे। मरते समय आप ही का नाम उनकी जिह्वा पर था।

यह दुःखपूर्ण समाचार सुनते ही रामचन्द्र पछाड़ खाकर गिर पड़े। जब तनिक चेतना आई तो रोने लगे। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गईं। हाय ! पिताजी का अन्तिम दर्शन भी प्राप्त न हुआ ! अब रामचन्द्र को ज्ञात हुआ कि महाराज दशरथ को उनसे कितना प्रेम था। उनके वियोग में प्राण त्याग दिये। बोले—यह मेरा दुर्भाग्य है कि अन्तिम समय उनके दर्शन न कर सका। जीवन-भर इसका खेद रहेगा। अब हम उनकी सबसे बड़ी यही सेवा कर सकते हैं कि अपने कामों से उनकी आत्मा को प्रसन्न करें। महाराज अपनी प्रजा को कितना प्यार करते थे। तुम भी प्रजा का पालन करते रहना। सेना के प्रसन्न रहने ही से राज्य का अस्तित्व बना रहता है। तुम भी सैनिकों को प्रसन्न रखना। उनका वेतन ठीक समय पर देते रहना। न्याय के विषय में किसी के साथ लेशमात्र भी पक्षपात न करना। हरएक काम में मंत्रियों से अवश्य परामर्श लेना और उनके परामर्श पर आचरण करना। निर्धनों को धनिकों के अत्याचार से बचाना। किसानों के साथ कभी सख़्ती न

करना। खेती की सिंचाई के लिए कुएँ, नहरें, ताल बनवाना। लड़कों की शिक्षा की ओर से असावधान न होना। और राज्य के कर्मचारियों की सख्ती से निगरानी करते रहना, अन्यथा ये लोग प्रजा को नष्ट कर देंगे।

भरत ने कहा—भाई साहब! मैं यह बातें क्या जानूँ। मैं तो आपकी सेवा में इसी लिए उपस्थित हुआ हूँ कि आपको अयोध्या ले चलूँ। अब तो हमारे पिता भी आप ही हैं। आप हमें जो आज्ञा देंगे, हम उसे बजा लायेंगे। हमारी आप से यही विनती है, इसे स्वीकार कीजिये। जब से आप आये हैं, अयोध्या में वह श्री ही न रही। चारों ओर मृत्यु की-सी नीरवता है। लोग आपको याद करके रोया करते हैं। अब तक मैं सब को यही आश्वासन देता रहा हूँ कि रामचंद्र शीघ्र वापस आएँगे। यदि आप न लौटेंगे, तो राज्य में कुहराम मच जायगा और सारा दोष और कलंक मेरे सिर रखा जायगा।

रामचन्द्र ने उत्तर दिया—भैया, जिन वचनों को पूरा करने के लिए पिताजी ने अपना प्राण तक दे दिया, उसे पूरा करना मेरा धर्म है। उन्हें अपना वचन अपने प्राण से भी अधिक प्रिय था। इस आज्ञा का पालन मैं न करूँ, तो संसार में कौन-सा मुँह दिखाऊँगा। तुम्हें भी उनकी आज्ञा मानकर राज्य करना चाहिये। मैं चौदह वर्ष व्यतीत होने के बाद ही अयोध्या में पैर रखूँगा।

भरत ने बहुत प्रार्थना-विनती की। गुरु वशिष्ठ और प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने रामचन्द्र को खूब समझाया, किन्तु वह अयोध्या चलने पर किसी प्रकार सहमत न हुए। तब भरत ने रोकर कहा—भैया, यदि आपका यही निर्णय है, तो विवश होकर हमको भी मानना ही पड़ेगा। किन्तु आप मुझे अपनी खड़ाऊँ दे दीजिये। आज से यह खड़ाऊँ ही राजसिंहासन पर विराजेगी। हम सब आपके चाकर होंगे। जब तक आप लौटकर न आयेंगे, अभागा भरत भी आप ही के समान साधुओं का-सा जीवन व्यतीत करेगा। किन्तु चौदह वर्ष बीत जाने पर भी आप न आये, तो मैं आग में जल मरूँगा।

यह कहकर भरत ने रामचन्द्र की खड़ाऊँ को सिर पर रखा और बिदा हुए। रामचन्द्र ने कौशिल्या और सुमित्रा के पैरों पर सिर रखा और उन्हें बहुत ढाढ़स देकर बिदा किया। कैकेयी लज्जा से सिर झुकाये खड़ी थी। रामचन्द्र जब उसके चरणों पर झुके, तो वह फूट-फूटकर रोने लगी। रामचन्द्र की सज्जनता और निर्मल हृदयता ने सिद्ध कर दिया कि राम पर उसका सन्देह अनुचित था।

जब सब लोग नन्दिग्राम में पहुँचे, तो भरत ने मन्त्रियों से कहा—आप लोग अयोध्या जायँ, मैं चौदह वर्ष तक इसी प्रकार इस गाँव में रहूँगा। राजा रामचन्द्र के सिंहासन पर बैठकर अपना परलोक न बिगाड़ूँगा। जब आपको मुझसे किसी सम्बन्ध में परामर्श करने की आवश्यकता हो, मेरे पास चले आइयेगा।

भरत की यह सज्जनता और उदारता देखकर लोग आश्चर्य में आ गये। ऐसा कौन होगा, जो मिलते हुए राज्य को यों ठुकराकर अलग हो जाय। लोगों ने बहुत चाहा कि भरत अयोध्या चलकर राज करें, किन्तु भरत ने वहाँ जाने से निश्चित असहमति प्रकट कर दी। एक कवि ने ठीक कहा है कि भरत-जैसा सज्जन पुत्र उत्पन्न करके कैकेयी ने अपने सारे दोषों पर धूल डाल दी।

आखिर सब रानियाँ, शत्रुघ्न और अयोध्या के निवासी भरत को वहीं छोड़कर अयोध्या चले आये। शत्रुघ्न मन्त्रियों की सहायता से राजकार्य सँभालते थे और भरत नन्दिग्राम में बैठे हुए उनकी निगरानी करते रहते थे। इस प्रकार चौदह वर्ष बीत गये।

वन-कांड

दंडक-वन

भरत के चले आने के बाद रामचन्द्र ने भी चित्रकूट से चले जाने का निश्चय कर लिया। उन्हें विचार हुआ कि अयोध्या के निवासी वहाँ बराबर आते-जाते रहेंगे और उनके आने-जाने से यहाँ के ऋषियों को कष्ट होगा। तीनों आदमी घूमते हुए अत्रि मुनि के पास पहुँचे। अत्रि ईश्वर-प्राप्त एक वृद्ध थे। उनकी पत्नी अनुसूया भी बड़ी बुद्धिमती स्त्री थीं। उन्होंने सीताजी को स्त्रियों के कर्तव्य समझाये और बड़ा सत्कार किया। तीनों आदमी यहाँ कई महीने रहकर दंडक-वन की ओर चले। इस वन में अच्छे-अच्छे ऋषि रहते थे। रामचन्द्र उनके दर्शन करना चाहते थे।

दंडक-वन में विराध नामक एक बड़ा अत्याचारी राजा था। उसके अत्याचार से सारा नगर उजाड़ हो गया था। उसकी सूरत बहुत डरावनी थी और डील पहाड़ का-सा था। वह रात-दिन मदिरा पीकर बेहोश पड़ा रहता था। युद्ध की कला में वह इतना दक्ष था कि साधारण अस्त्रों से उसे मारना असम्भव था। राम, लक्ष्मण और सीता इस वन में थोड़ी ही दूर गये थे कि विराध की दृष्टि उन पर पड़ी। उसे सन्देह हुआ कि यह लोग अवश्य किसी स्त्री को भगाकर लाये हैं, अन्यथा दो पुरुषों के बीच में एक स्त्री क्यों होती। फिर यह दोनों आदमी साधुओं के वेष में होकर भी हाथ में धनुष और बाण लिये हुए हैं। निकट आकर बोला—तुम दोनों आदमी मुझे दुराचारी प्रतीत होते हो। तुमने यात्रियों को लूटने के लिए ही साधुओं का वेष धारण किया है। अब कुशल इसी में है कि तुम दोनों इस स्त्री को मुझे दे दो और यहाँ से भाग जाओ, अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूँगा।

रामचन्द्र ने कहा—हम दोनों कोशल के महाराज दशरथ के पुत्र हैं और यह हमारी पत्नी है। तुमने यदि फिर इस प्रकार धृष्टता से बात की, तो मैं तुम्हें जीवित न छोड़ूँगा।

विराध ने हँसकर कहा—तुम-जैसे दो क्या सौ-पचास भी मर सामने आ जायँ, तो मार डालूँ। सँभल जाओ, अब मैं वार करता हूँ।

रामचंद्र ने कई बाण चलाये; पर विराध के शरीर पर उनका कोई प्रभाव न हुआ। तब तो रामचंद्र बहुत घबराये। शेर भी उनका बाण खाकर गिर पड़ते थे। किन्तु इस राक्षस पर उनका तनिक भी प्रभाव न हुआ। यह घटना उनकी समझ में न आई। तब दोनों भाइयों ने तलवार निकाली और विराध पर टूट पड़े। किन्तु तलवार के घावों का भी उस पर कुछ प्रभाव न हुआ। उसने ऐसी तपस्या की थी कि उसका शरीर लोहे के समान कड़ा और ठोस हो गया था। कुछ देर तक वह चुपचाप खड़ा तलवार के घाव खाता रहा। तब एकाएक जोर से गरजा और दोनों भाइयों को कंधे पर लेकर भागा। सीताजी रोने लगीं। किन्तु राम और लक्ष्मण उसके कन्धों पर बैठकर भी तलवार चलाते रहे। यहाँ तक कि विराध की दोनों बाहु कटकर भूमि पर गिर पड़ीं। तब दोनों भाई भूमि पर कूद पड़े। और विराध भी थोड़ी देर में तड़प-तड़पकर मर गया।

विराध का वध करके तीनों आदमी और आगे बढ़े। उस समय में ऋषि-गण संसार से मुँह मोड़कर वनों में तपस्या करते थे। वन के फल और कन्द-मूल उनका भोजन और पेड़ों की छाल उनकी पोशाक थी। किसी झोपड़ी में, या किसी पेड़ के नीचे वह एक मृगछाला बिछाकर पड़े रहते थे। धन और वैभव को वह लोग तिनके के समान तुच्छ समझते थे। संतोष और सरलता ही उनका सबसे बड़ा धन था। वह बड़े-बड़े राजाओं की भी चिन्ता न करते थे। किसी के सामने हाथ न फैलाते थे। शारीरिक आकांक्षाओं के चक्कर में न पड़कर वे लोग अपना मन और मस्तिष्क बौद्धिक और धार्मिक बातों के सोचने में लगाते थे। उन वन में बसनेवाले और जंगली फल खानेवाले पुरुषों ने जो ग्रंथ लिखे, उन्हें पढ़कर आज भी बड़े-बड़े विद्वानों की आँखें खुल जाती हैं। दंडक-वन में कितने ही ऋषि रहते थे। तीनो आदमी एक-एक दो-दो महीने हर एक ऋषि के शरण में रहते और उनसे ज्ञान की बातें सीखते

थे। इस प्रकार दंडक वन में घूमते हुए उन्हें कई वर्ष बीत गये। आखिर वे लोग अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचे। यह महात्मा और सब ऋषियों से बड़े समझे जाते थे। वह केवल ऋषि ही न थे, युद्ध की कला में भी दक्ष थे। कई बड़े-बड़े राक्षसों का वध कर चुके थे। रामचन्द्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कई महीने तक अपने यहाँ अतिथि रखा। जब रामचन्द्र यहाँ से चलने लगे, तो अगस्त्य ऋषि ने उन्हें एक ऐसा अलौकिक तरकश दिया, जिसके तीर कभी समाप्त ही न होते थे।

रामचन्द्र ने पूछा—महाराज, आप तो इस वन से भली प्रकार परिचित होंगे। हमें कोई ऐसा स्थान बताइये, जहाँ हम लोग आराम से रहकर वनवास के शेष दिन पूरे कर लें।

अगस्त्य ने पचवटी की बड़ी प्रशंसा की। यह स्थान नर्मदा नदी के किनारे स्थित था। वहाँ का जलवायु ऐसा अच्छा था कि न जाड़े में कड़ा जाड़ा पड़ता था, न गरमी में कड़ी गरमी। पहाड़ियाँ बारहो-मास हरियाली से लहराती रहती थीं। तीनों आदमियों ने इस स्थान पर जाकर रहने का निश्चय किया।

पंचवटी

कई दिन के बाद तीनों आदमी पंचवटी जा पहुँचे। इसकी जितनी प्रशंसा सुनी थी, उससे कहीं बढ़कर पाया। नर्मदा के दोनों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ फूलों से लदी हुई खड़ी थीं। नदी के निर्मल जल में हंस और बगुले तैरा करते थे। किनारे हिरनों का समूह पानी पीने आता था और खूब कुलेलें करता था। जंगल में मोर नाचा करते थे। वायु इतनी स्वच्छ और स्फूर्तिदायक थी कि रोगी भी स्वस्थ हो जाता था। यह स्थान तीनों आदमियों को इतना पसन्द आया कि उन्होंने एक झोपड़ा बनाया और सुख से रहने लगे। दिन को पहाड़ियों की सैर करते, प्रकृति के हृदय-ग्राहक दृश्यों का आनन्द उठाते, चिड़ियों के गाने सुनते, और जंगली फल खाकर कुटी में सो रहते। इस प्रकार कई महीने बीत गये।

पंचवटी से थोड़ी ही दूर पर राक्षसों की एक बस्ती थी। उनके दो सरदार थे। एक का नाम था खर और दूसरे का दूषण। लंका के राजा रावण की एक बहन शूर्पणखा भी वहीं रहती थी। यह लोग लूट-मारकर जीवन व्यतीत करते थे।

एक दिन रामचन्द्र और सीता पेड़ के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे थे कि उधर से शूर्पणखा निकली। इन दोनों आदमियों को देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि यह कौन लोग यहाँ आ गये। ऐसे सुन्दर मनुष्य उसने कभी न देखे थे। वह थी तो काली-कलूटी, अत्यन्त कुरूप, किन्तु अपने को परी समझती थी। इसी लिए अब तक विवाह नहीं किया था, क्योंकि राक्षसों से विवाह करना उसे रुचिकर न था। रामचन्द्र को देखकर फूली न समाई। बहुत दिनों के बाद उसे अपने जोड़ का एक युवक दिखाई दिया। निकट आकर बोली—तुम लोग किस देश के आदमी हो? तुम जैसे आदमी तो मैंने कभी नहीं देखे।

रामचन्द्र ने कहा—हम लोग अयोध्या के रहनेवाले हैं। हमारे पिताजी अयोध्या के राजा थे। आजकल हमारे भाई राज्य करते हैं।

शूर्पणखा—बस, तब तो सारी बात बन गई। मैं भी राजा की लड़की हूँ। मेरा भाई रावण लंका में राज्य करता है। बस, हमारा तुम्हारा अच्छा जोड़ है। मैं तुम्हारे ही जैसा पति ढूंढ़ रही थी, तुम अच्छे मिले, अब मुझसे विवाह कर लो। तुम्हारा सौभाग्य है कि मुझ-जैसी सुन्दरी तुमसे विवाह करना चाहती है।

रामचन्द्र ने व्यंग से जवाब दिया—अवश्य मेरा सौभाग्य है। तुम्हारी-जैसी परी तो इन्द्रलोक में भी न होगी। मेरा जी तो तुमसे विवाह करने के लिए बहुत व्याकुल है। किन्तु कठिनाई यह है कि मेरा विवाह हो चुका है और यह स्त्री मेरी पत्नी है। यह तुमसे झगड़ा करेगी। हाँ, मेरा छोटा भाई जो वह सामने बैठा हुआ है, यहाँ अकेला है। उसकी पत्नी उसके साथ नहीं है। वह चाहे तो तुमसे विवाह कर सकता है। तुम उसके पास जाओ। तुम्हारा सौंदर्य देखते ही वह मोहित हो जायगा। वही तुम्हारे योग्य भी है।

शूर्पणखा—इस स्त्री की तुम अधिक चिन्ता न करो। मैं उसे अभी मार डालूँगी। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। मुझ जैसी स्त्री फिर न पाओगे। मेरी और तुम्हारी जोड़ी ईश्वर ने अपने हाथ से बनाई है।

रामचन्द्र—नहीं, तुम भूल करती हो। मैं तो तुम्हारे योग्य हूँ ही नहीं। भला कहाँ मैं और कहाँ तुम! तुम्हारे योग्य तो मेरा भाई है, जो वय में मुझसे छोटा है और मुझसे अधिक वीर है।

शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गई और बोली—मैं एक आवश्यकता-वश इधर आई थी। तुम्हारे भाई रामचन्द्र की दृष्टि मुझ पर पड़ गई, तो वह मुझ पर आसक्त हो गये, और मुझसे विवाह करने की इच्छा की। पर मैंने ऐसे पुरुष से विवाह करना पसन्द न किया, जिसकी पत्नी मौजूद है। मेरे योग्य तो तुम हो, तनिक मेरी ओर देखो, ऐसा कोयले का-सा चमकता हुआ रंग तुमने और कहीं देखा है? मेरी नाक बिल-कुल चिलम की-सी है और होंठ कितनी सुन्दरता से नीचे लटके हुए हैं। तुम्हारा सौभाग्य है कि मेरा दिल तुम्हारे ऊपर आ गया। तुम मुझसे विवाह कर लो।

लक्ष्मण ने मुस्कराकर कहा—हाँ, इसमें तो सन्देह नहीं कि तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है और मैं हूँ भ भाग्यवान् कि मुझसे तुम विवाह करने को प्रस्तुत हो। पर मैं रामचं का छोटा भाई और चाकर हूँ। तुम मेरी पत्नी हो जाओगी, तो तुम्हें सीताजी की सेवा करनी पड़ेगी। तुम रानी बनने के योग्य हो, जाकर भाई साहब ही से कहो। वही तुमसे विवाह करेंगे।

शूर्पणखा फिर राम के पास गई, किन्तु वहाँ फिर वही उत्तर मिला कि तुम्हारे योग्य लक्ष्मण हैं, उन्हीं के पास जाओ। इस प्रकार उसे दोनों बातों में टालते रहे। जब उसे विश्वास हो गया कि यहाँ मेरी कामना पूरी न होगी तो वह मुँह बना-बनाकर गालियाँ बकने लगी और सीताजी से लड़ाई करने पर सन्नद्ध हो गई। उसकी यह दुष्टता देखकर लक्ष्मण को क्रोध आ गया, उन्होंने शूर्पणखा की नाक काट ली और कानों का भी सफाया कर दिया।

अब क्या था। शूर्पणखा ने वह हाय-वाय मचाई कि दुनिया सिर पर उठा ली। तीनों आदमियों को गालियाँ देती, रोती-पीटती वह खर और दूषण के पास पहुँची और अपने अपमान और अप्रतिष्ठा की सारी कथा कह गई। भैया, दोनों भाई बड़े दुष्ट हैं। मुझे देखते ही दोनों मुझ पर बुरी दृष्टि डालने लगे। और मुझसे विवाह करने के लिए जोर देने लगे। कभी बड़ा भाई अपनी ओर खींचता था, कभी छोटा भाई। जब मैं इस पर सहमत न हुई तो दोनों ने मेरे नाक-कान काट लिये। तुम्हारे रहते मेरी यह दुर्गति हुई। अब मैं किसके पास शिकायत लेकर जाऊँ। जब तक उन दोनों के सिर मेरे सामने न आ जायँगे, मेरे लिए अन्न-जल निषिद्ध है।

खर और दूषण यह हाल सुनकर क्रोध से पागल हो गये। उसी समय अपनी सेना को तैयार हो जाने का आदेश दिया। दम-के-दम में चौदह हजार आदमी राम और लक्ष्मण को इस खलता का दण्ड देने चले। आगे-आगे नकटी शूर्पणखा रोती चली जा रही थी।

रामचंद्र ने जब राक्षसों की यह सेना आते देखी, तो लक्ष्मण को सीताजी की रक्षा के लिए छोड़कर आप उनका सामना करने के लिए तैयार हो गये। राक्षसों ने आते ही तीरों की बौछार करनी प्रारंभ कर दी। किन्तु रामचद्र के बाणों के सम्मुख उनकी क्या चलती। सब के सब एक साथ तो तीर छोड़ ही न सकते थे। पहली पंक्ति के लोग जितने तीर छोड़ते, रामचंद्र एक ही तीर से उनके सब तीरों को काट देते थे। जिस प्रकार राइफिल के सामने तोड़ेदार बन्दूक बेकाम है, उसी प्रकार रामचन्द्र के अग्नि-बाणों के सम्मुख राक्षसों के बाण बेकाम हो गये।

एक-एक बार में सैकड़ों का सफाया होने लगा। यह देखकर राक्षसों का साहस टूट गया। सारी सेना तितर-बितर हो गई। संध्या होते-होते वहाँ एक राक्षस भी न रहा। केवल मृत शरीर क्षेत्र में पड़े थे।

खर और दूषण ने जब देखा कि चौदह हजार राक्षसों की सेना बात की बात में नष्ट हो गई, तो उन्हें विश्वास हो गया कि राम और

लक्ष्मण बड़े वीर हैं। उन पर विजय पाना सरल नहीं। अपने पूरे बल से उन पर आक्रमण करना पड़ेगा। यह विचार भी था कि यदि हम लोग इन दोनों आदमियों को न जीत सके तो हमारी कितनी बदनामी होगी। बड़े ज़ोर-शोर से तैयारियाँ करने लगे। रात भर में कई हज़ार सैनिकों की एक चुनी हुई सेना तैयार हो गई। उनके पास मूसल, भाले, धनुष-बाण, गदा, फरसे, त्रिशूल, तलवार, डंडे सभी प्रकार के अस्त्र थे। किन्तु सब पुराने ढंग के। युद्ध की कला से भी वह अवगत न थे। बस, एक साथ दौड़ पड़ना जानते थे। सैनिकों का क्रम किस प्रकार होना चाहिए, इसका उन्हें लेशमात्र भी ज्ञान न था। सबसे बड़ी खराबी यह थी कि वे सब शराबी थे। शराब पी-पीकर बहकते थे। किन्तु सच्ची वीरता उनमें नाम को भी न थी।

सवेरे रामचन्द्रजी उठे तो राक्षसों की सेना आते देखी। आज का युद्ध कल से अधिक भीषण होगा, यह उन्हें ज्ञात था। सीताजी को उन्होंने एक गुफा में छिपा दिया और दोनों आदमी पहाड़ के ऊपर चढ़कर राक्षसों पर तीर चलाने लगे। उनके तीर ऊपर से बिजली की तरह गिरते थे और एक साथ सैकड़ों को धराशायी कर देते थे। खर और दूषण अपनी सेना को ललकारते थे, बढ़ावे देते थे, किन्तु उन अचूक तीरों के सामने सेना के कलेजे दहल उठते थे। राम और लक्ष्मण पर उनके बाणों का लेशमात्र भी प्रभाव न होता था, क्योंकि दोनों भाई पहाड़ के ऊपर थे। वह इतने वेग से तीर चलाते थे कि ज्ञात होता था कि उनके हाथों में बिजली का वेग आ गया है। तीर कब तरकश से निकलता था, कब धनुष पर चढ़ता था, कब छूटता था, यह किसी को दिखाई नहीं देता था। फिर अगस्त्य ऋषि का दिया हुआ तरकश भी तो था, जिसके तीर कभी समाप्त न होते थे। फल यह हुआ कि राक्षसों के पाँव उखड़ गये। सेना में भगदड़ पड़ गई। खर और दूषण ने बहुत चाहा कि आदमियों को रोकें, पर उन्होंने एक भी न सुनी। सिर पर पाँव रखकर भागे। अब केवल खर और दूषण मैदान में रह गये। यह दोनों साहसी और वीर थे। उन्होंने बड़ी देर तक राम और लक्ष्मण

का सामना किया, किन्तु आखिर उनकी मौत भी आ ही गई। दोनों मारे गये। अकेली शूर्पणखा अपने भाइयों की मृत्यु पर विलाप करने को बच रही।

हिरण का शिकार

शूर्पणखा के दो भाई तो मारे गये, किन्तु अभी दो और शेष थे, उनमें से एक लंका देश का राजा था। उस समय में दक्षिण में लंका से अधिक बलवान् और बसा हुआ कोई राज्य न था। रावण भी राक्षस था, किन्तु बड़ा विद्वान्, शास्त्रों का पंडित; उसके धन की कोई सीमा न थी। यहाँ तक कि कहा जाता है, लंका शहर का नगरकोट सोने का बना हुआ था। व्यापार का बाजार गर्म था। विद्या, कला और कौशल की खूब चर्चा थी और वहाँ की कारीगरी अनुपम थी। किन्तु जैसा प्रायः होता है, धन और साम्राज्य ने रावण को दंभी, अत्याचारी, और दुष्ट बना दिया था। विद्वान् और गुणी होने पर भी वह बुरे से बुरा काम करने से भी न हिचकता था। शूर्पणखा रोती-पीटती उसके पास पहुँची और छाती पीटने लगी।

रावण ने उसकी यह बुरी दशा देखी तो आश्चर्य से बोला—क्या है शूर्पणखा, क्या बात है? तेरी यह दशा कैसे हुई? यह तेरी नाक क्या हुई? इस प्रकार रो क्यों रही है?

शूर्पणखा ने आँसू पोंछकर कहा—भैया, मेरी हालत क्या पूछते हो। मेरी जो दुर्गति हुई है, वह सातवें शत्रु की भी न हो। पंचवटी में दो तपस्वी अयोध्या से आकर ठहरे हुए हैं। दोनों राजा दशरथ के पुत्र हैं। एक का नाम राम है, दूसरे का लक्ष्मण। राम की पत्नी सीता भी उनके साथ है। उन लोगों ने मेरी नाक और कान काट लिये और जब खर और दूषण इसका दण्ड देने के लिए सेना लेकर गये तो सारी सेना का वध कर दिया। एक आदमी भी जीवित न बचा। भैया! तुम्हारे जीते-जी मेरी यह दशा!

राम और लक्ष्मण का नाम सुनकर रावण के होश उड़ गये। वह

भी सीता के स्वयंम्वर में सम्मिलत हुआ था, और जिस धनुष को वह हिला भी न सका था, उसी को राम के हाथों टूटते देख चुका था। सीता का रूप भी वह देख चुका था। उसकी याद अभी तक उसको भूली न थी। मन में सोचने लगा, यदि उन दोनों भाइयों को किसी प्रकार मार सकूँ, तो सीता हाथ आ जाय। किन्तु इस विचार को छिपाकर बोला—हाय! तूने यह कैसा समाचार सुनाया! मेरे दोनों वीर भाई मारे गये? एक राक्षस भी जीवित न बचा? वह दोनों लड़के आफ़त के परकाले मालूम होते हैं। किन्तु तू संतोष कर। दोनों को इस प्रकार मारूँगा कि वह भी समझेंगे कि किसी से पाला पड़ा था। वह कितने ही वीर हों, रावण का एक संकेत उनका अंत कर देने के लिए पर्याप्त है। मेरे लिए यह डूब मरने की बात है कि मेरी बहन का इतना निरादर हो, मेरे भाई मारे जाँय, और मैं बैठा रहूँ। आज ही उन्हें दंड देने की चिन्ता करता हूँ।

शूर्पणखा बोली—भैया! दोनों बड़े दुष्ट हैं। मुझसे बलात् विवाह करना चाहते थे। किन्तु भला मैं उन्हें कब विचार में लाती थी। जब मैं उन्हें दुत्कारकर चली, तो छोटे भाई ने यह शरारत की। भैया, इसका बदला केवल यही नहीं है कि दोनों भाई मारे जायँ, पूरा बदला तभी होगा, जब सीताजी का भी वैसा ही अनादर और दुर्गति हो, जैसी उन्होंने मेरी की है। क्या कहूँ भैया, सीता कितनी सुन्दर है। बस, यही समझ लो कि चाँद का-सा मुखड़ा है। ईश्वर ने उसे तुम्हारे लिए बनाया है। राम उसके योग्य नहीं है। उससे अवश्य विवाह करना।

रावण ने बहन को सान्त्वना दी, और उसी समय मारीच नामक राक्षस को बुलाकर कहा—अब अपना कुछ कौशल दिखाओ। बहुत दिनों से बैठे-बैठे व्यर्थ का वेतन ले रहे हो। रामचन्द्र और लक्ष्मण पंचवटी में आये हुए हैं। दोनों ने शूर्पणखा की नाक काट ली है, खर और दूषण का मार डाला है, और सारे राक्षसों को नष्ट कर दिया है। इन दोनों से इन कुकर्मों का बदला लेना है। बतलाओ, मेरी कुछ सहायता करोगे?

मारीच वही राक्षस था, जो विश्वामित्र का यज्ञ अपवित्र करने गया था और रामचन्द्र का एक बाण खाकर भागा था। तब से वह यहीं पड़ा था। रामचन्द्र से उसका पुराना वैमनस्य था। यह ख़बर सुनकर बाग़-बाग़ हो गया। बोला—आपकी सहायता करने को तन और प्राण से प्रस्तुत हूँ। अबकी इनसे विश्वास-घात की लड़ाई लड़ूँगा और पुराना बैर चुकाऊँगा। ऐसा चकमा दूँ कि एक बूँद रक्त भी न गिरे और दोनों भाई मारे जायँ।

रावण—बस, ऐसी कोई युक्ति सोचो कि सीता मेरे हाथ लग जाय। फिर दोनो भाइयों को मारना कौन कठिन काम रह जायगा।

मारीच—ऐसा तो न कहिये महाराज! वीरता में दोनों जोड़ नहीं रखते। मैं उनकी लड़कपन की वीरता देख चुका हूँ। दोनों एक सेना के लिए पर्याप्त हैं। अभी उनसे युद्ध करना उचित नहीं। मामला बढ़ जायगा और सीता को यह कहीं छिपा देंगे। मैं ऐसी युक्ति बता दूँगा कि सीता आपके घर में आ जाय और दोनों भाइयों को ख़बर भी न हो। कुछ पता ही न चले कि कहाँ गई। आख़िर तलाश करते-करते निराश होकर बैठ रहेंगे।

रावण का मुख खिल उठा। बोला—मित्र, परामर्श तो तुम बहुत उचित देते हो। यही मैं भी चाहता हूँ। यदि काम बिना लड़ाई-झगड़े के हो जाय, तो क्या कहना। आयु-पर्यन्त तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा। आज ही स तुम्हारी वृद्धि कर दूँ और पद भी बढ़ा दूँ। भला बतलाओ तो क्या युक्ति सोची है?

मारीच—बतलाता तो हूँ; किन्तु राजन् से बड़ा भारी पुरस्कार लूँगा। आप जानते ही हैं, सूरत बदलने में मैं कितना कुशल हूँ। ऐसे सुन्दर हिरन का भेष बना लूँ, जैसा किसी ने न देखा हो। गुलाबी रंग होगा, उस पर सुनहरे धब्बे, सारा शरीर हीरे के समान चमकता हुआ। बस, जाकर रामचन्द्र की कुटी के सामने कुलाचें भरने लगूँगा। दोनों भाई देखते ही मुझे पकड़ने दौड़ेंगे। मैं भागूँगा, दोनों मेरा पीछा करेंगे। मैं दौड़ता हुआ उन्हें दूर भगा ले जाऊँगा। आप एक साधु का भेष

बना लीजियेगा। जिस समय सीता अकेली रह जायँ; आप जाकर उन्हें उठा लाइएगा। थोड़ी दूर पर आपका रथ खड़ा रहेगा। सीता को रथ पर बिठाकर घोड़ों को हवा कर दीजिएगा। राम जब आयेंगे तो सीता को न पाकर इधर-उधर तलाश करेंगे, फिर निराश होकर किसी ओर चल देंगे। बोलिये, कैसी युक्ति है कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।

रावण ने मारीच की बहुत प्रशंसा की और दोनों सीता को हर लाने की तैयारियाँ करने लगे।

छल

तीसरे पहर का समय था। राम और सीता कुटी के सामने बैठे बातें कर रहे थे कि एकाएक अत्यन्त सुन्दर हिरन सामने कुलेलें करता हुआ दिखाई दिया। वह इतना सुन्दर, इतने मोहक रंग का था कि सीता उसे देखकर रीझ गईं। ऐसा प्रतीत होता था कि इस हिरन के शरीर में हीरे जड़े हुए हैं। रामचन्द्र से बोलीं—देखिये, कैसा सुन्दर हिरन है।

लक्ष्मण को उस समय विचार आया कि हिरन इस रूप-रंग का नहीं होता; अवश्य कोई न कोई छल है। किन्तु इस भय से कि रामचन्द्र शायद उन्हें शक्की समझें, मुँह से कुछ नहीं कहा। हाँ, दिल में मना रहे थे कि रामचन्द्र के दिल में भी यही विचार पैदा हो। रामचन्द्र ने हिरन को बड़ी उत्सुकता से देखकर कहा—हाँ, है तो बड़ा सुन्दर। मैंने ऐसा हिरन नहीं देखा।

सीता—इसको जीवित पकड़कर मुझे दे दीजिये। मैं इसे पालूँगी और इसे अयोध्या ले जाऊँगी। लोग इसे देखकर आश्चर्य में आ जायँगे। देखिए, कैसा कुलाचें भर रहा है।

राम—जीवित पकड़ना तो तनिक कठिन काम है।

सीता—चाहती तो यही हूँ कि जीवित पकड़ा जाय, किन्तु मर भी गया, तो उसकी मृगछाला कितनी उत्तम श्रेणी की होगी।

रामचन्द्र धनुष और बाण लेकर चले, तो लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिए और कुछ दूर जाकर बोले—भैया, आप व्यर्थ परेशान हो रहे हैं, यह हिरन जीवित हाथ न आयेगा। हाँ, कहिये तो मैं शिकार कर लाऊँ।

राम—इसीलिए तो मैंने तुमसे नहीं कहा। मैं जानता था कि तुम्हें क्रोध आ जायगा, तीर चला दोगे। तुम सीता के पास बैठो, वह अकेली हैं। मैं अभी इसे जीवित पकड़े लाता हूँ।

यह कहते हुए रामचन्द्र हिरन के पीछे दौड़े, लक्ष्मण को और कुछ कहने का अवसर न मिला। विवश होकर सीताजी के पास लौट आये। इधर हिरन कभी रामचन्द्र के सामने आ जाता, कभी पत्तों के आड़ में हो जाता, कभी इतने समीप आ जाता कि मानो अब थक गया है; फिर एकाएक छलाँग मारकर दूर निकल जाता। इस प्रकार भुलावे देता हुआ वह रामचंद्र को बहुत दूर ले गया, यहाँ तक कि वह थक गये, और उन्हें विश्वास हो गया कि यह हिरण जीवित हाथ न आयेगा। मारीच भागा तो जाता था, किन्तु लक्ष्मण के न आने से उसकी युक्ति सफल होती न दीखती थी। जब तक सीताजी अकेली न होंगी, रावण उन्हें हर कैसे सकेगा। यह सोचकर उसने कई बार जोर से चिल्लाकर कहा—हाय लक्ष्मण! हाय सीता!

रामचन्द्र का कलेजा धड़क उठा। समझ गये कि मुझे धोखा हुआ। यह बनावटी हिरन है। अवश्य किसी राक्षस ने यह भेष बनाया है। वह इसीलिए लक्ष्मण का नाम लेकर पुकार रहा है कि लक्ष्मण भी दौड़ आयें और सीता अकेली रह जायँ। यह विचार आते ही उन्होंने हिरन को जीवित पकड़ने का विचार छोड़ दिया। ऐसा निशाना मारा कि पहले ही वार में हिरन गिर पड़ा। किन्तु वह निर्दय मरने के पहले अपना काम पूरा कर चुका था। रामचंद्र तो दौड़े हुए कुटी की ओर आ रहे थे कि कहीं लक्ष्मण सीता को छोड़कर चले न आ रहे हों, उधर सीताजी ने जो 'हाय लक्ष्मण! हाय सीता!' की पुकार सुनी, तो उनका रक्त ठंडा हो गया। आँखों में अँधेरा छा गया। यह तो प्यारे राम की आवाज़ है। अवश्य शत्रु ने उन्हें घायल कर दिया है। रोकर

लक्ष्मण से बोलीं—मुझे तो ऐसा भय होता है कि यह स्वामी की ही आवाज़ है। अवश्य उन पर कोई बड़ी विपत्ति आई है, अन्यथा तुम्हें क्यों पुकारते। लपककर देखा तो, क्या माजरा है। मेरा तो कलेजा धड़-धड़ कर रहा है। दौड़ते ही जाओ। लक्ष्मण ने भी यह आवाज़ सुनी और समझ गये कि किसी राक्षस ने छल किया। ऐसी दशा में सीता को अकेले छोड़कर जाना वह कब सहन कर सकते। बोले—भाई साहब की ओर से आप निश्चिंत रहें, जिसने चौदह हज़ार राक्षसों का अन्त कर दिया, उसे किसका भय हो सकता है। भैया हिरन को लिये आते ही होंगे। आपको अकेली छोड़कर मैं न जाऊँगा। भाई साहब ने इस विषय में खूब चेता दिया था। सीता ने क्रोध से कहा—मेरी तुम्हें क्यों इतनी चिन्ता सवार है! क्या मुझे कोई शेर या भेड़िया खाये जाता है। अवश्य स्वामी पर कोई विपत्ति आई है। और तुम हाथ पर हाथ रखे बैठे हो। क्या यही भाई का प्रेम है, जिस पर तुम्हें इतना घमण्ड है?

लक्ष्मण कुछ खिन्न होकर बोले—मैंने तो कभी भाई के प्रेम का घमण्ड नहीं किया। मैं हूँ ही किस योग्य। मैं तो केवल उनकी सेवा करना चाहता हूँ। उन्होंने चलते-चलते मुझे चेतावनी दी थी कि यहाँ से कहीं न जाना। इसलिए मुझे जाने में सोच-विचार हो रहा है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि भाई साहब का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। उनके धनुष और बाण के सम्मुख किसका साहस है, जो ठहर सके। आप व्यर्थ इतना डर रही हैं।

सीताजी ने मुँह फेरकर कहा—मैं तुम्हारा-सा हृदय कहाँ से लाऊँ, जो उनकी आवाज़ सुनकर भी निश्चिंतता से बैठी रहूँ। सच कहा है—भाई-सा दोस्त, न भाई-सा दुश्मन। मैं तुम्हें अपना सहायक और सच्चा रक्षक समझती थी। किन्तु अब ज्ञात हुआ कि तुम भी कैकेयी से सधे-बधे हो, या फिर तुम्हें यहाँ से जाते हुए भय हो रहा है कि कहीं किसी शत्रु से सामना न हो जाय। मैं तुम्हें न इतना कृतघ्न समझती थी, और न इतना डरपोक।

यह ताना बाण के समान लक्ष्मण के हृदय में चुभ गया। उन्हें राम से सच्चा भ्रातृ-प्रेम था और सीताजी को भी वह माता के समान समझते थे। वह रामचन्द्र के एक संकेत पर जान देने को तैयार रहते थे। जहाँ राम का पसीना गिरे, वहाँ अपना रक्त बहाने में भी उन्हें खेद न था। उन्हें भय था कि कहीं मेरी अनुपस्थिति में सीताजी पर कोई विपत्ति आ गई, कोई राक्षस आकर उन्हें छेड़ने लगा, तो मैं रामचन्द्र को क्या मुँह दिखाऊँगा। उस समय जब रामचन्द्र पूछेंगे कि तुम मेरी आज्ञा के विरुद्ध सीता को अकेली छोड़कर क्यों चले गये, तो मैं क्या जवाब दूँगा। किन्तु जब सीताजी ने उन्हें कृतघ्न, डरपोक और धोखेबाज़ बना दिया, तब उन्हें अब इसके सिवा कोई चारा न रहा कि राम की खोज में जायँ। उन्होंने धनुष और बाण उठा लिया और दुःखित होकर बोले—भाभीजी! आपने इस समय जो-जो बातें कहीं, उनकी मुझे आपसे आशा न थी। ईश्वर न करे, वह दिन आये, किन्तु अवसर आयेगा, तो मैं दिखा दूँगा कि भाई के लिए भाई कैसे जान देते हैं। मैं अब भी कहता हूँ कि भैया किसी खतरे में नहीं, किन्तु चूँकि आपकी आज्ञा है, उसका पालन करता हूँ। इसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर है।

सीता का हरा जाना

यह कहकर लक्ष्मण तो चल दिये। रावण ने जब देखा कि मैदान ख़ाली है, तो उसने एक हाथ में चिमटा उठाया, दूसरे हाथ में कमण्डल लिया और 'नारायण, नारायण!' करता हुआ सीताजी की कुटी के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। सीताजी ने देखा कि एक जटाधारी महात्मा द्वार पर आये हैं, तो बाहर निकल आईं और महात्मा को प्रणाम करके बोलीं—कहिये महाराज, कहाँ से आना हुआ?

रावण ने आशीर्वाद देकर कहा—माता, साधु-सन्तों को तीर्थयात्रा के अतिरिक्त क्या काम है। बद्रीनाथ की यात्रा करने जा रहा हूँ, यहाँ तुम्हारा आश्रम देखकर चला आया। किन्तु यह तो बतलाओ, तुम कौन हो और यहाँ कैसे आ पड़ी हो? तुम्हारे-जैसी सुन्दरी किसी

राजा-महाराजा के रनिवास में रहने योग्य है। तुम इस जंगल में कैसे आ गईं। मैंने तुम्हारा-जैसा सौन्दर्य कहीं नहीं देखा।

सीता ने लज्जा से सिर झुकाकर कहा—महाराज, हम लोग विपत्ति के मारे हुए हैं। मैं मिथिलापुरी के महाराजा जनक की पुत्री, और कोशल के महाराजा दशरथ की पुत्रवधू हूँ। किन्तु भाग्य ने ऐसा पलटा खाया है कि आज जंगलों की खाक छान रही हूँ। धन्य भाग्य है कि आपके दर्शन हुए। आज यहीं विश्राम कीजिये। आज्ञा हो तो कुछ जल-पान के लिए लाऊँ।

रावण—तू बड़ी दयावान् है माता। ला, जो कुछ हो, खिला दे। ईश्वर तेरा कल्याण करे।

सीताजी ने एक पत्तल में कन्दमूल और कुछ फल रखे और रावण के सामने लाईं। रावण ने पत्तल ले लेने के लिए हाथ बढ़ाया, तो पत्तल के बदले सीताजी ही को गोद में उठाकर वह अपने रथ की ओर दौड़ा और एक क्षण में उन्हें रथ पर बिठाकर घोड़ों को हवा कर दिया। सीताजी मारे भय के मूर्च्छित हो गईं। जब चेतना जागी तो देखा कि मैं रथ पर बैठी हूँ, और वह महात्माजी रथ को उड़ाये चले जा रहे हैं। चिल्लाकर बोलीं—बाबाजी, तुम मुझे कहाँ लिये जा रहे हो, ईश्वर के लिए बतलाओ तुम साधु के वेष में कौन हो।

रावण ने हँसकर कहा—बतला ही दूँ ? मैं लंका का ऐश्वर्यशाली राजा रावण हूँ। तुम्हारी यह मोहिनी सूरत देखकर पागल हो रहा हूँ। अब तुम राम को भूल जाओ और उनकी जगह मुझी को पति समझो। तुम लका के राजा के योग्य हो, भिखारी राम के योग्य नहीं।

सीताजी को मानो गोली लग गई। आह ! मुझसे बड़ी भूल हुई कि लक्ष्मण को बलात् राम के पास भेज दिया। वह शब्द भी इसी राक्षस का था। हाय ! लक्ष्मण अन्त तक मुझे छोड़कर जाना अस्वीकार करता रहा। किन्तु मैंने न माना। हाय ! क्या ज्ञात था कि भाग्य यों मेरे पीछे पड़ा हुआ है। दोनों भाई कुटी में जाकर मुझे न पायेंगे, तो उनकी क्या दशा होगी।

यह सोचते हुए सीताजी ने चाहा कि रथ पर से कूद पड़ें। किन्तु रावण भी असावधान न था। उनका विचार ताड़ गया। तुरंत उनका हाथ पकड़ लिया और बोला—रथ से कूदने का विचार न करो सीता! तनिक देर के बाद हम लंका पहुँच जाते हैं, वहाँ तुम्हें सुख और ऐश्वर्य के ऐसे सामान मिलेंगे कि तुम उस वन के जीवन को भूल जाओगी। इस कुटी के बदले तुम्हें आस्मान से बातें करता हुआ राजमहल मिलेगा, जिसका फर्श चाँदी का है और दीवारें सोने की, जहाँ गुलाब और कस्तूरी की सुगंध आठों पहर उड़ा करती है; और एक भिखारी पति के बदले वह पति मिलेगा, जिसकी उपमा आज इस पृथ्वी पर नहीं, जिसके धन और प्रसिद्धि का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता—जिसके द्वार पर देवता भी सिर झुकाते हैं।

सीता ने भयानक होकर कहा—बस, ज़बान सँभाल! कपटी राक्षस! एक सती के साथ छल करते हुए लज्जा नहीं आती? इस पर ऐसी डींगें मार रहा है! अपना भला चाहता है तो रथ पर से उतार दे। अन्यथा याद रख—रामचंद्र तेरे और तेरे सारे वंश का नामो-निशान मिटा देंगे। कोई तेरे नाम को रोनेवाला भी न रह जायगा। लंका जनहीन हो जायगी। तेरे ऐश्वर्यशाली प्रासादों में गीदड़ अपने कान बनायेंगे और उल्लू बसेरा लेंगे। तू अभी राम और लक्ष्मण के क्रोध को नहीं जानता। खर और दूषण तेरे ही भाई थे, जिनकी चौदह हज़ार सेना दोनों भाइयों ने बात-की-बात में नष्ट कर दी। शूर्पणखा भी तेरी ही बहन थी जो अपना सम्मान हथेली पर लिये फिरती है। तुझे लाज भी नहीं आती! अपनी जान का दुश्मन न बन। अपने और अपने वंश पर दया कर। मुझे जाने दे।

रावण ने हँसकर कहा—उसी शूर्पणखा के निरादर और खर-दूषण के रक्त का बदला ही लेने के लिए मैं तुम्हें लिये जा रहा हूँ। तुम्हें याद न होगा, मैं भी तुम्हारे स्वयंवर में सम्मिलित हुआ था; किन्तु एक छोटे-से धनुष को तोड़ना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझ-कर लौट आया था। मैंने तुम्हें उसी समय देखा था। उसी समय से

तुम्हारी प्यारी-प्यारी सूरत मेरे हृदय पर अंकित हो गई है। मेरा सौभाग्य तुम्हें यहाँ लाया है। अब तुम्हें नहीं छोड़ सकता। तुम्हारे हित में भी यही अच्छा है कि राम को भूल जाओ और मेरे साथ सुख से जीवन का आनंद उठाओ। मुझे तुमसे जितना प्रेम है, उसका तुम अनुमान नहीं कर सकती। मेरी प्यारी पत्नी बनकर तुम सारी लंका की रानी बन जाओगी। तुम्हें किसी बात की कमी न रहेगी। सारी लंका तुम्हारी सेवा करेगी और लंका का राजा तुम्हारे चरण धो-धोकर पियेगा। इस वन में एक भिखारी के साथ रहकर क्यों अपना रूप और यौवन नष्ट कर रही हो। मेरे ऊपर न सही, अपने ऊपर दया करो।

सीताजी ने जब देखा कि इस अत्याचारी पर क्रोध का कोई प्रभाव नहीं हुआ और यह रथ को भगाये ही लिये जाता है, तो अनु-नय-विनय करने लगीं—तुम इतने बड़े राजा होकर भी धर्म का लेश-मात्र भी विचार नहीं करते! मैंने सुना है कि तुम बड़े विद्वान् और शिवजी के भक्त हो और तुम्हारे पिता पुलस्त्य ऋषि थे। क्या तुमको मुझ पर तनिक भी दया नहीं आती? यदि यह तुम्हारा विचार है कि मैं तुम्हारा राजपाट देखकर फूल उठूँगी, तो तुम्हारा विचार सर्वथा मिथ्या है। रामचन्द्र के साथ मेरा विवाह हुआ है। चाहे सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम से निकले, चाहे नदी अपना बहाव बदल दे, चाहे पर्वत अपने स्थान से हिल जायँ, पर मैं धर्म के मार्ग से नहीं हट सकती। तुम व्यर्थ क्यों इतना बड़ा पाप अपने सिर लेते हो?

जब इस अनुनय का भी रावण पर कुछ प्रभाव न हुआ, तो सीता हाय राम! हाय राम! कहकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगीं। संयोग से उसी आसपास के प्रदेश में जटायु नाम का एक साधु रहता था। वह राम-चन्द्र के साथ प्रायः बैठता था और उन पर सच्चा विश्वास रखता था। उसने जब सीता को रथ पर राम का नाम लेते सुना, तो उसे तुरन्त सन्देह हुआ कि कोई राक्षस सीता को लिये जाता है, अस्त्र लेकर रथ के सामने जाकर खड़ा हो गया और ललकारकर बोला—तू कौन है और

सीताजी को कहाँ लिये जाता है ? तुरन्त रथ रोक ले, अन्यथा वह लट्ठ मारूँगा कि भेजा निकल पड़ेगा !

रावण इस समय लड़ना तो न चाहता था, क्योंकि उसे राम और लक्ष्मण के आ जाने का भय था, किन्तु जब जटायु मार्ग में खड़ा हो गया, तो उसे विवश होकर रथ रोकना पड़ा। घोड़ों की बाग खींच ली और बोला—क्यों शामत आई है, जो मुझसे छेड़-छाड़ करता है ! मैं लंका का राजा रावण हूँ। मेरी वीरता के समाचार तूने सुने होंगे। अपना भला चाहता है तो रास्ते से हट जा।

जटायु—तू सीता को कहाँ लिये जाता है ?

रावण—राम ने मेरी बहन की प्रतिष्ठा नष्ट की है, उसी का यह बदला है।

जटायु—यदि अपमान का बदला लेना था, तो मर्दों की तरह सामने क्यों न आया ? मालूम हुआ कि तू नीच और कपटी है। अभी सीताजी को रथ पर से उतार दे !

रावण बड़ा बली था। वह भला बेचारे जटायु की धमकियों को कब ध्यान में लाता था। लड़ने को प्रस्तुत हुआ। जटायु कमजोर था। किन्तु जान पर खेल गया। बड़ी देर तक रावण से लड़ता रहा। यहाँ तक कि उसका समस्त शरीर घावों से छलनी हो गया। तब वह बेहोश होकर गिर पड़ा और रावण ने फिर घोड़े बढ़ा दिये।

उधर लक्ष्मण कुटिया से चले तो; किन्तु दिल में पछता रहे थे कि कहीं सीता पर कोई आफ़त आई, तो मैं राम को मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, उनकी हिम्मत जवाब देती जाती थी। एकाएक रामचन्द्र आते दिखाई दिये। लक्ष्मण ने आगे बढ़कर डरते-डरते पूछा—क्या आपने मुझे बुलाया था ?

राम ने इस बात का कोई उत्तर न देकर कहा—क्या तुम सीता को अकेली छोड़कर चले आये ? गजब किया। यह हिरन न था; मारीच राक्षस था। हमें धोखा देने के लिए उसने यह भेष बनाया था, और तुम्हें धोखा देने के लिए मेरा नाम लेकर चिल्लाया था। क्या तुमने

मेरी आवाज़ भी न पहचानी ? मैंने तो तुम्हें आज्ञा दी थी कि सीता को अकेली न छोड़ना। मारीच की युक्ति काम कर गई। अवश्य सीता पर कोई विपत्ति आई। तुमने बुरा किया।

लक्ष्मण ने सिर झुकाकर कहा—भाभीजी ने मुझे बलात् भेज दिया। मैं तो आता ही न था, पर जब वह ताने देने लगीं, तो क्या करता।

राम ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा—तुमने उनके तानों पर ध्यान दिया, किन्तु मेरे आदेश का विचार न किया। मैं तो तुम्हें इतना बुद्धि-हीन न समझता था। अच्छा चलो, देखें भाग्य में क्या लिखा है।

दोनो भाई लपके हुए अपनी कुटी पर आये। देखा तो सीता का कहीं पता नहीं। होश उड़ गये। विकल होकर इधर-उधर चारो तरफ़ दौड़-दौड़कर सीता को ढूँढ़ने लगे। उन पेड़ों के नीचे जहाँ प्रायः मोर नाचते थे, नदी के किनारे जहाँ हिरन कुलेलें करते थे, सब कहीं छान डाला। किन्तु कहीं चिह्न न मिला। लक्ष्मण तो कुटी के द्वार पर बैठ-कर ज़ोर-ज़ोर से चीखें मार-मारकर रोने लगे किन्तु रामचन्द्र की दशा पागलों की-सी हो गई।

सभी वृक्षों से पूछते, तुमने सीता को तो नहीं देखा ? चिड़ियों के पीछे दौड़ते और पूछते, तुमने मेरी प्यारी सीता को देखा हो, तो बता दो। गुफाओं में जाकर चिल्लाते—कहाँ गई ? सीता कहाँ गई, मुझ अभागे को छोड़कर कहाँ गई ? हवा के झोंकों से पूछते, तुमको भी मेरी सीता की कुछ ख़बर नहीं ? सीता जो मुझे तीनों लोक से अधिक प्रिय थी, जिसके साथ यह वन भी मेरे लिए उपवन बना हुआ था, यह कुटी राज-प्रासाद को भी लज्जित करती थी, वह मेरी प्यारी सीता—कहाँ चली गई ?

इस प्रकार व्याकुलता को दशा में वह बढ़ते चले जाते थे। लक्ष्मण उनकी दशा देखकर और भी घबराये हुए थे। रामचन्द्र की दशा ऐसी थी कि सीता के वियोग में जीवित न रह सकेंगे। लक्ष्मण रोते थे कि कैकेयी के सिर यदि बनवास का अभियोग लगा तो मेरे सिर

सत्यानाश का अभियोग आयेगा। यदि रामचन्द्र को सँभालने की चिन्ता न होती, तो सम्भवतः वे उसी समय अपने जीवन का अन्त कर देते। एकाएक एक वृक्ष के नीचे जटायु को पड़े कराहते देखकर रामचंद्र रुक गये, बोले—जटायु! तुम्हारी यह क्या दशा है? किस अत्याचारी ने तुम्हारी यह गति बना डाली है?

जटायु रामचंद्र को देखकर बोला—आप आ गये? बस, इतनी ही कामना थी, अन्यथा अब तक प्राण निकल गया होता। सीताजी को लंका का राक्षस राजा रावण हर ले गया है। मैंने चाहा कि उनको उसके हाथ से छीन लूँ। उसी के साथ लड़ने में मेरी यह दशा हो गई। आह! बड़ी पीड़ा हो रही है। अब चला।

राम ने जटायु का सिर अपनी गोद में रख लिया। लक्ष्मण दौड़े कि पानी लाकर उसका मुँह तर करें, किन्तु इतने में जटायु के प्राण निकल गये। इस वन में एक सहायक था, वह भी मर गया। राम को इसके मरने का बहुत खेद हुआ। बहुत देर तक उसके निष्प्राण शरीर को गोद में लिए रोते रहे। ईश्वर से बार-बार यही प्रार्थना करते थे कि इसे स्वर्ग में सबसे अच्छी जगह दीजियेगा क्योंकि इस वीर ने एक दुखियारी की सहायता में प्राण दिये हैं, जो औचित्य की सहायता के लिए रावण जैसे बली पुरुष के सम्मुख आने से भी न हिचका। यही मित्रता का धर्म है। यही मनुष्यता का धर्म है। वीर जटायु का नाम उस समय तक जीवित रहेगा, जब तक राम का नाम जीवित रहेगा।

लक्ष्मण ने इधर-उधर से लकड़ी बटोरकर चिता तैयार की, रामचंद्र ने मृत-शरीर उस पर रखा, और वेद-मन्त्रों का पाठ करते हुए उसकी दाह-क्रिया की। फिर वहाँ से आगे बढ़े। अब उन्हें सीता का पता मिल गया था, इस बात की व्याकुलता न थी कि सीता कहाँ गई। यह चिन्ता थी कि रावण से सीता को कैसे छीन लेना चाहिए। इस काम के लिए सहायकों की आवश्यकता थी। बहुत बड़ी सेना तैयार करनी पड़ेगी, लंका पर आक्रमण करना पड़ेगा। यह चिन्ताएँ पैदा हो गईं थीं। चलते-चलते सूरज डूब गया। राम को अब किसी बात की सुधि न

थी, किन्तु लक्ष्मण का यह विचार हो रहा था कि रात कहाँ काटी जाय। कोई गाँव न दिखाई देता था, न किसी ऋषि का आश्रम। इसी चिन्ता में थे कि सामने वृक्षों के एक कुञ्ज में एक झोपड़ी दिखाई दी। दोनों आदमी उस झोपड़ी की ओर चले। यह झोपड़ी एक भीलनी की थी जिसका नाम शवरी था। उसे जो ज्ञात हुआ कि यह दोनों भाई अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं, तो मारे खुशी के फूली न समाई, बोली—धन्य मेरे भाग्य कि आप मेरी झोपड़ी तक आये। आपके चरणों से मेरी झोपड़ी पवित्र हो गई। रात भर यहीं विश्राम कीजिये—यह कहकर वह जंगल में गई और ताज़े फल तोड़ लाई। कुछ जंगली बेर थे, कुछ करौंदे, कुछ शरीफे। शवरी खूब रसीले, पके हुए फल ही चुन रही थी। इस भय से कि कोई खट्टा न निकल जाय, वह प्राय: फलों को कुतरकर उनका स्वाद ले लेती थी। भीलनी क्या जानती थी कि जूठी चीज़ खाने के योग्य नहीं रहती। इस प्रकार वह एक टोकरी फलों से भर कर लाई और खाने के लिए अनुरोध करने लगी। इस समय दुःख के मारे उनका जी कुछ खाने को तो न चाहता था, किन्तु शवरी का सत्कार स्वीकार था। वह कितने प्रेम से जंगल से फल लाई है, इसका विचार तो करना ही पड़ेगा। जब फल खाने प्रारम्भ किये तो कोई-कोई कुतरे हुए दिखाई दिये, किन्तु दोनों भाइयों ने फलों को और भी प्रेम के साथ खाया, मानो वह जूठे थे, किन्तु उनमें प्रेम का रस भरा हुआ था। दोनों भाई बैठे फल खा रहे थे और शवरी खड़ी पंखा झल रही थी। उसे यह डर लगा हुआ था कि कहीं मेरे फल खट्टे या कच्चे न निकल जायँ, तो यह लोग भूखे रह जायँगे। शायद मुझे घुड़कियाँ भी दें। राजा हैं ही, क्या ठिकाना। किन्तु जब उन लोगों ने खूब बखान-बखानकर फल खाये, तो उसे मानों स्वर्ग का ठेका मिल गया।

दोनों भाइयों ने रात वहीं व्यतीत की। प्रातः शवरी से बिदा होकर आगे बढ़े।

उधर रावण रथ को भगाता हुआ पंपासुर पहाड़ के निकट पहुँचा, तो सीताजी ने देखा कि पहाड़ पर कई बन्दरों की-सी सूरतवाले आदमी

ऐंठे हुए हैं। सीताजी ने विचार किया कि रामचंद्र मुझे ढूँढ़ते हुए अवश्य इधर आवेंगे। इसलिए उन्होंने अपने कई आभूषण और चादर रथ के नीचे डाल दिये कि संभवतः इन लोगों की दृष्टि इन चीजों पर पड़ जाय और वह रामचंद्र को मेरा पता बता सकें। आगे चलकर तुमको मालूम होगा कि सीताजी की इस कुशलता से रामचंद्र को उनका पता लगाने में बड़ी सहायता मिली।

लंका पहुँचकर रावण ने सीताजी को अपने महल, बाग़, ख़ज़ाने, सेनायें सब दिखाईं। वह समझता था कि मेरे ऐश्वर्य और धन को देखकर सीताजी लालच में पड़ जायँगी। उसका महल कितना सुन्दर था, उपवन कितने नयनाभिराम थे, सेनायें कितनी असंख्य और नये-नये अस्त्र-शस्त्रों से कितनी सजी हुई थीं, कोष कितना असीम था, उसमें कितने हीरे-जवाहर भरे हुए थे, किन्तु सीताजी पर इस सेना का भी कुछ प्रभाव न हुआ। उन्हें विश्वास था कि रामचंद्र के बाणों के सामने यह सेनाय कदापि न ठहर सकेंगी। जब रावण ने देखा कि सीताजी ने मेरे इस ठाट-बाट की तिनके बराबर भी परवा न की, तो बोला—क्या तुम्हें अब भी मेरे बल का अनुमान नहीं हुआ? क्या तुम अब भी समझती हो कि रामचंद्र तुम्हें मेरे हाथों से छुड़ा ले जायँगे। इस विचार को मन से निकाल डालो।

सीताजी ने घृणा की दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—इस विचार को मैं हृदय से किसी प्रकार नहीं निकाल सकती। रामचंद्र अवश्य मुझे ले जायँगे और तुझे इस दुष्टता और नीचता का मज़ा भी चखायेंगे। तेरी सारी सेना, सारा धन, सारे अस्त्र-शस्त्र धरे रह जायँगे। उनके बाण मृत्यु के बाण हैं। तू उनसे न बच सकेगा। वह आन की आन में तेरी यह सोने की लंका राख और काली कर देंगे। तेरे वंश में कोई दीपक जलानेवाला भी न रह जायगा। यदि तुझे अपने जीवन से कुछ प्रेम हो, तो मुझे उनके पास पहुँचा दे और उनके चरणों पर नम्रता से गिरकर अपनी धृष्टता की क्षमा माँग ले। वह बड़े दयालु हैं। तुझे क्षमा कर देंगे। किन्तु यदि तू अपनी दुष्टता से बाज़ न आया तो तेरा सत्यानाश हो जायगा।

रावण क्रोध से जल उठा। महल के समीप ही अशोक वाटिका नाम का एक उपवन था, रावण ने सीताजी को उसी में ठहरा दिया और कई राक्षसी स्त्रियों को इसलिए नियुक्त किया कि वह सीता को सताएँ और हर प्रकार का कष्ट पहुँचाकर उन्हें उसकी ओर आकृष्ट करने के लिए विवश करें; अवसर पाकर उसकी प्रशंसा से भी सीताजी को आकर्षित करें। यह प्रबन्ध करके वह तो चला गया, किन्तु राक्षसी स्त्रियाँ थोड़े ही दिनों में सीताजी की नेकी और सज्जनता और पति का सच्चा प्रेम देखकर उनसे प्रेम करने लग गईं और उन्हें कष्ट पहुँचाने के बदले हर तरह का आराम देने लगीं। वह सीताजी को आश्वासन भी देती रहती थीं। हाँ, जब रावण आ जाता, तो उसे दिखाने के लिए सीता पर दो-चार घुड़कियाँ जमा देती थीं।

किष्किन्धा-कांड

सीताजी की खोज

राम और लक्ष्मण सीता की खोज में पर्वत और वनों की खाक छानते चले जाते थे कि सामने ऋष्यमूक पहाड़ दिखाई दिया। उसकी चोटी पर सुग्रीव अपने कुछ निष्ठावान् साथियों के साथ रहा करता था। यह मनुष्य किष्किन्धा-नगर के राजा बालि का छोटा भाई था। बालि ने एक बात पर असन्तुष्ट होकर उसे राज्य से निकाल दिया था और उसकी पत्नी तारा को उससे छीन लिया था। सुग्रीव भागकर इस पहाड़ पर चला आया था और यद्यपि वह छिपकर रहता था, फिर भी उसे यह शंका बनी रहती थी कि कहीं बालि उसका पता न लगा ले और उसे मारने के लिए किसी को भेज न दे। उसने राम और लक्ष्मण को धनुष और बाण लिये जाते देखा, तो प्राण सूख गये। विचार आया कि हो न हो बालि ने इन दोनो वीर युवकों को मुझे मारने के लिए भेजा है। अपने आज्ञाकारी मित्र हनुमान से बोला—भाई, मुझे तो इन दोनो आदमियों से भय लगता है। बालि ने इन्हें मुझे मारने के लिए भेजा है। अब बतलाओ, कहीं जाकर छिपूँ ?

हनुमान सुग्रीव का सच्चा हितैषी था। इस निर्धनता में और सब साथियों ने सुग्रीव से मुँह मोड़ लिया था। उसकी बात भी न पूछते थे, किन्तु हनुमान बड़े बुद्धिमान थे और जानते थे कि सच्चा मित्र वही है, जो संकट में साथ दे। अच्छे दिनों में तो शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। उन्होंने सुग्रीव को समझाया—आप इतना डरते क्यों हैं। मुझे इन दोनों आदमियों के चेहरे से मालूम होता है कि यह बहुत सज्जन और दयालु हैं। मैं भी इनके पास जाकर उनका हाल-चाल पूछता हूँ। यह कहकर हनुमान ने एक ब्राह्मण का भेष बनाया, माथे पर तिलक लगाया, जनेऊ पहना, पोथी बगल में दबाई और लाठी टेकते हुए रामचंद्र के पास जाकर बोले—आप लोग यहाँ कहाँ से आ रहे हैं ? मुझे तो ऐसा

प्रतीत होता है कि आप लोग परदेशी हैं और सम्भवतः आपका कोई साथी खो गया है।

रामचंद्र ने कहा—हाँ, देवताजी! आपका विचार ठीक है। हम लोग परदेशी हैं। दुर्भाग्य के मारे अयोध्या का राज्य छोड़कर यहाँ वनों में भटक रहे हैं। उस पर नई विपत्ति यह पड़ी की कोई मेरी पत्नी सीता को भी उठा ले गया। उसकी खोज में इधर आ निकले। देखें, अभी कहाँ-कहाँ ठोकरें खानी पड़ती हैं

हनुमान ने सहानुभूति पूर्ण भाव से कहा—महाराज, घबराने की कोई बात नहीं है। आप अयोध्या के राजकुमार हैं, तो हम लोग भी आपके सेवक हैं। मेरे साथ पहाड़ पर चलिये। यहाँ राजा सुग्रीव रहते हैं। उन्हें बालि ने किष्किन्धापुरी से निकाल दिया है। बड़े ही नेक और सज्जन पुरुष हैं, यदि उनसे आपसे मित्रता हो गई, तो फिर बड़ी ही सरलता से आपका काम निकल जायगा। वह चारों तरफ़ अपने आदमी भेजकर पता लगायेंगे, और ज्योंही पता मिला, अपनी विशाल सेना लेकर महारानीजी को छुड़ा लायेंगे। उन्हें आप अपना सेवक समझिये।

राम ने लक्ष्मण से कहा—मुझे तो यह आदमी हृदय से निष्कपट और सज्जन मालूम होता है। इसके साथ जाने में कोई हर्ज नहीं मालूम होता। कौन जाने, सुग्रीव ही से हमारा काम निकले। चलो, तनिक सुग्रीव से भी मिल लें।

दोनो भाई हनुमान के साथ पहाड़ पर पहुँचे। सुग्रीव ने दौड़कर उनकी अभ्यर्थना की और लाकर अपने बराबर सिंहासन पर बैठाया।

हनुमान ने कहा—आज बड़ा शुभ दिन है कि अयोध्या के धर्मात्मा राजा राम किष्किन्धापुरी के राजा सुग्रीव के अतिथि हुए हैं। आज दोनो मिलकर इतने बलवान् हो जायँगे कि कोई सामना न कर सकेगा। आपकी दशा एक-सी है और आप दोनो को एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। राजा सुग्रीव महारानी सीता की खोज करेंगे और महाराजा रामचंद्र बालि को मारकर सुग्रीव को राजा बनायेंगे और

रानी तारा को वापस दिला देंगे। इसलिए आप दोनों अग्नि को साक्षी बनाकर प्रण कीजिये कि सदा एक दूसरे की सहायता करते रहेंगे, चाहे उसमें कितना ही संकट हो।

आग जलाई गई। राम और सुग्रीव उसके सामने बैठे और एक दूसरे की सहायता करने का निश्चय और प्रण किया। फिर बातें होने लगीं। सुग्रीव ने पूछा—आपको ज्ञात है कि सीताजी को कौन उठा ले गया? यदि उसका नाम ज्ञात हो जाय, तो सम्भवतः मैं सीताजी का सरलता से पता लगा सकूँ।

राम ने कहा—यह तो जटायु से ज्ञात हो गया है, भाई। यह लंका के राजा रावण की दुष्टता है। उसी ने हम लोगों को छलकर सीता को हर लिया और अपने रथ पर बिठाकर ले गया।

अब सुग्रीव को उन आभूषणों की याद आई, जो सीताजी ने रथ पर से नीचे फेंके थे। उसने उन आभूषणों को मँगवाकर रामचंद्र के सामने रख दिया और बोला—आप इन आभूषणों को देखकर पहचानिये कि यह महारानी सीता के तो नहीं हैं। कुछ समय हुआ, एक दिन एक रथ इधर से जा रहा था। किसी स्त्री ने उस पर से यह गहने फेंक दिये थे। मुझे तो प्रतीत होता है, वह सीताजी ही थीं। रावण उन्हें लिये चला जाता था। जब कुछ वश न चला, तो उन्होंने यह आभूषण गिरा दिये कि शायद आप इधर आयें और हम लोग आपको उनका पता बता सकें।

आभूषणों को देखकर रामचंद्र की आँखों से आँसू गिरने लगे। एक दिन वह था, कि यह गहने सीताजी के तन पर शोभा देते थे। आज यह इस प्रकार मारे-मारे फिर रहे हैं। मारे दुःख के वह इन गहनों को देख न सके, मुँह फेरकर लक्ष्मण से कहा—भैया, तनिक देखो तो, यह तुम्हारी भाभी के आभूषण हैं?

लक्ष्मण ने कहा—भाई साहब, इस गले के हार और हाथों के कंगन के विषय में तो मैं कुछ निवेदन नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने कभी भाभी के चेहरे की ओर देखने का साहस नहीं किया। हाँ, पाँव के

बिछुए और पायजेब भाभी ही के हैं। मैं उनके चरणों को छूते समय प्रतिदिन इन चीज़ों को देखता रहा हूँ। निस्संदेह यह चीज़ें देवीजी ही की हैं।

सुग्रीव बोला—तब तो इसमें संदेह नहीं कि दक्षिण की ओर ही सीता का पता लगेगा। आप जितने शीघ्र मुझे राज्य दिला दें, उतने ही शीघ्र मैं आदमियों को उधर भेजने का प्रबंध करूँ। किन्तु यह समझ लीजिये कि बालि अत्यन्त बलवान् पुरुष है और युद्ध के कौशल भी खूब जानता है। मुझे यह सन्तोष कैसे होगा कि आप उस पर विजय पा सकेंगे। वह एक बाण से तीन वृक्षों को एक ही साथ छेद डालता है।

पर्वत के नीचे सात वृक्ष एक ही पंक्ति में लगे हुए थे। रामचंद्र ने बाण को धनुष पर लगाकर छोड़ा, तो वह सातों वृक्षों को पार करता हुआ फिर तरकश में आ गया। रामचंद्र का यह कौशल देखकर सुग्रीव का विश्वास हो गया कि यह बालि को मार सकेंगे। दूसरे दिन उसने हथियार सजे और बड़ी वीरता से बालि के सामने जाकर बोला—ओ अत्याचारी! निकल आ! आज मेरी और तेरी अन्तिम बार मुठभेड़ हो जाय। तूने मुझे अकारण ही राज्य से निकाल दिया है। आज तुझे उसका मज़ा चखाऊँगा।

बालि ने कई बार सुग्रीव को पछाड़ दिया था। पर हर बार तारा के सिफ़ारिश करने पर उसे छोड़ दिया था। यह ललकार सुनकर क्रोध से लाल हो गया और बोला—मालूम होता है, तेरा काल आ गया है। क्यों व्यर्थ अपनी जान का दुश्मन हुआ है? जा, चोरों की तरह पहाड़ों पर छिपकर बैठ। तेरे रक्त से क्या हाथ रँगूँ।

तारा ने बालि को अकेले में बुलाकर कहा—मैंने सुना है कि सुग्रीव ने अयोध्या के राजा रामचंद्र से मित्रता कर ली है। वह बड़े वीर हैं। तुम उसका थोड़ा-बहुत भाग देकर राज़ी कर लो। इस समय लड़ना उचित नहीं।

किन्तु बालि अपने बल के अभिमान में अन्धा हो रहा था।

बोला—सुग्रीव एक नहीं सौ राजाओं को अपनी सहायता के लिए बुला लाये, मैं लेशमात्र चिन्ता नहीं करता। जब मैंने रावण की कुछ हक़ीक़त नहीं समझी, तो रामचंद्र की क्या हस्ती है। मैंने समझा दिया है, किन्तु वह मुझे लड़ने पर विवश करेगा तो उसका दुर्भाग्य। अबकी मार ही डालूँगा। सदैव के लिए झगड़े का अन्त कर दूँगा।

बालि जब बाहर आया तो देखा, सुग्रीव अभी तक खड़ा ललकार रहा है। तब उससे सहन न हो सका। अपनी गदा उठा ली और सुग्रीव पर झपटा। सुग्रीव पीछे हटता हुआ बालि को उस स्थान तक लाया, जहाँ रामचंद्र धनुष और बाण लिये घात में बैठे थे। उसे आशा थी कि अब रामचंद्र बाण छोड़कर बालि का अन्त कर देंगे। किन्तु जब कोई बाण न आया, और बालि उस पर वार करता ही गया, तब तो सुग्रीव जान लेकर भागा और पर्वत की एक गुफा में छिप गया। बालि ने भागे हुए शत्रु का पीछा करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझकर मूँछों पर ताव देते हुए घर का रास्ता लिया।

थोड़ी देर के पश्चात् जब रामचन्द्र सुग्रीव के पास आये, तो वह बिगड़कर बोला—वाह साहब, वाह! आपने तो आज मेरी जान ही ले ली थी। मुझसे तो कहा कि मैं पेड़ की आड़ से बालि को मार गिराऊँगा और तीर के नाम एक तिनका भी न छोड़ा। जब आप बालि से इतना डरते थे, तो मुझे लड़ने के लिए भेजा ही क्यों था? मैं तो बड़े आनन्द से यहाँ छिपा बैठा था। मैं न जानता था कि आप बचन से इतना मुँह मोड़नेवाले हैं। भाग न आता, तो उसने आज मुझे मार ही डाला था।

राम ने लज्जित होकर कहा—सुग्रीव, मैं अपने बचन को भूला न था और न बालि से डर ही रहा था। बात यह थी कि तुम दोनों भाई सूरत-शकल में इतना मिलते जुलते हो कि मैं दूर से पहचान ही न सका कि कौन तुम हो और कौन बालि। डरता था कि मारूँ तो बालि को और तीर लग जाय तुम्हें। बस, इतनी-सी बात थी। कल तुम एक माला गले में पहनकर फिर उससे लड़ो। इस प्रकार मैं तुम्हें पहचान जाऊँगा और एक ही बाण में बालि का अन्त कर दूँगा।

दूसरे दिन सुग्रीव ने फिर जाकर बालि को ललकारा—कल मैंने तुम्हें बड़ा भाई समझकर छोड़ दिया था, अन्यथा चाहता तो चटनी कर डालता। मुझे आशा थी कि तू मेरे इस व्यवहार से कुछ नरम होगा और मेरे आधे राज्य के साथ मेरी पत्नी को मुझे वापस कर देगा। किन्तु तूने मेरे व्यवहार का कुछ आदर न किया। इसलिए आज मैं फिर लड़ने आया हूँ। आज फैसला ही करके छोड़ूँगा।

बालि तुरन्त निकल आया। सुग्रीव के डींग मारने पर आज उसे बड़ा क्रोध आया। उसने निश्चय कर लिया था कि आज इसे जीवित न छोड़ूँगा। दोनों फिर उसी मैदान में आकर लड़ने लगे। बालि ने तनिक देर में सुग्रीव को दे पटका और उसकी छाती पर सवार होकर चाहता था कि उसका सिर काट ले कि एकाएक किसी ओर से एक ऐसा तीर आकर उसके सीने में लगा कि वह तुरंत नीचे गिर पड़ा। सीने से रुधिर की धारा बहने लगी। उसकी समझ में न आया कि यह तीर किसने मारा। उसके राज्य में तो कोई ऐसा पुरुष न था, जिसके तीर में इतना बल होता।

वह इसी असमंजस में पड़ा चिल्ला रहा था कि राम और लक्ष्मण धनुष और बाण लिये सामने आ खड़े हुए। बालि समझ गया कि रामचन्द्र ने ही उसे तीर मारा है। बोला—क्यों महाराज! मैंने तो सुना था कि तुम बड़े धर्मात्मा और वीर हो। क्या तुम्हारे देश में इसी को वीरता कहते हैं कि किसी आदमी पर छिपकर वार किया जाय? मैंने तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा था।

रामचंद्र ने उत्तर दिया—मैंने तुम्हें इसीलिए नहीं मारा कि तुम मेरे शत्रु हो, किन्तु इसलिए कि तुमने अपने वंश पर अत्याचार किया है और सुग्रीव की पत्नी को अपने घर में रख लिया है। ऐसे आदमी का वध करना पाप नहीं है। तुम्हें अपने सगे भाई के साथ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए था। तुम समझते हो कि राजा स्वतंत्र है, वह जो चाहे कर सकता है। यह तुम्हारी भूल है। राजा उसी समय तक स्वतंत्र है, जब तक वह सज्जनता और न्याय के मार्ग पर चलता है।

जब वह नेकी के रास्ते से हट जाय, तो प्रत्येक मनुष्य का, जो पर्याप्त बल रखता हो, उसे दंड देने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त सुग्रीव मेरा मित्र है, और मित्र का शत्रु मेरा शत्रु है। मेरा कर्तव्य था कि मैं अपने मित्र की सहायता करता।

बालि को घातक घाव लगा था। जब उसे विश्वास हो गया कि अब मैं कुछ क्षणों का और मेहमान हूँ, तो उसने अपने पुत्र अंगद को बुलाकर सिपुर्द किया और बोला—सुग्रीव! अब मैं इस संसार से बिदा हो रहा हूँ। इस अनाथ लड़के को अपना पुत्र समझना। यही तुमसे मेरी अन्तिम विनती है। मैंने जो कुछ किया, उसका फल पाया। तुमसे मुझे कोई शिकायत नहीं। जब दो भाई लड़ते हैं, तो विनाश के सिवाय और फल क्या हो सकता है। बुराइयों को भूल जाओ। मेरे दुर्व्यवहारों का बदला इस अनाथ लड़के से न लेना। इसे ताने न देना। मेरी दशा से पाठ लो और सत्य के रास्ते से चलो। यह कहते-कहते बालि के प्राण निकल गये। सुग्रीव किष्किन्धापुरी का राजा हुआ और अंगद राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया। तारा फिर सुग्रीव की रानी हो गई।

हनुमान

बरसात का मौसम आया। नदी-नाले, झील-तालाब पानी से भर गये। मैदानों में हरियाली लहलहाने लगी। पहाड़ियों पर मोरों ने शोर मचाना प्रारम्भ किया। आकाश पर काले-काले बादल मँडराने लगे। राम और लक्ष्मण ने सारी बरसात पहाड़ की गुफा में व्यतीत की। यहाँ तक कि बरसात गुजर गई और जाड़ा आया। पहाड़ी नदियों की धारा धीमी पड़ गई, कास के वृक्ष सुफ़ेद फूलों से लद गये। आकाश स्वच्छ और नीला हो गया। चाँद का प्रकाश निखर गया। किन्तु सुग्रीव ने अब तक सीता को ढूँढ़ने का कोई प्रबन्ध न किया। न राम लक्ष्मण ही की कुछ सुध ली। एक समय तक विपत्तियाँ झेलने के पश्चात् राज्य का सुख पाकर विलास में डूब गया। अपना वचन याद न रहा।

अन्त में रामचंद्र ने प्रतीक्षा से तंग आकर एक दिन लक्ष्मण से कहा—देखते हो सुग्रीव की कृतघ्नता। जब तक बालि न मरा था, तब तक तो रात-दिन ख़ुशामद किया करता था और जब राज मिल गया और किसी शत्रु का भय न रहा, तो हमारी ओर से बिल्कुल निश्चिन्त हो गया। तुम तनिक जाकर उसे एक बार याद तो दिला दो। यदि मान जाय तो शुभ, अन्यथा जिस बाण से बालि को मारा, उसी बाण से सुग्रीव का अन्त कर दूँगा।

लक्ष्मण तुरन्त किष्किंधा नगरी में प्रविष्ट हुए और सुग्रीव के पास जाकर कहा—क्यों साहब! सज्जनता और भलमंसी के यही अर्थ हैं कि जब तक अपना स्वार्थ था, तब तक तो रात-दिन घेरे रहते थे और जब राज्य मिल गया तो सारे वायदे भूल बैठे? कुशल चाहते हो तो तुरन्त अपनी सेना को सीता की खोज़ में रवाना करो, अन्यथा फल अच्छा न होगा। जिन हाथों ने बालि का एक क्षण में अन्त कर दिया, उन्हें तुमको मारने में क्या देर लगती है। रास्ता देखते-देखते हमारी आँखें थक गईं, किन्तु तुम्हारी नींद न टूटी। तुम इतने शील-रहित और स्वार्थी हो? मैं तुम्हें एक मास का समय देता हूँ। यदि इस अवधि के अन्दर सीताजी का कुछ पता न चल सका तो तुम्हारी कुशल नहीं।

सुग्रीव को मारे लज्जा के सिर उठाना कठिन हो गया। लक्ष्मण से अपनी भूलों की क्षमा माँगी और बोला—वीर लक्ष्मण! मैं अत्यन्त लज्जित हूँ कि अब तक अपना वचन न पूरा कर सका। श्री रामचन्द्र ने मुझ पर जो एहसान किया, उसे मरते दम तक न भूलूँगा। अब तक मैं राज्य की परेशानियों में फँसा हुआ था। अब दिल और जान से सीताजी की खोज करूँगा। मुझे विश्वास है कि एक महीने में मैं उनका पता लगा दूँगा।

यह कहकर वह लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर चला आया, जहाँ राम और लक्ष्मण रहते थे। और यहीं से सीताजी को तलाश करने का प्रबंध करने लगा। विश्वासी और परीक्षा-युक्त आदमियों को चुन-चुनकर देश के हरेक हिस्से में भेजना शुरू किया। कोई पंजाब और

कंधार की तरफ़ गया, कोई बंगाल की ओर, कोई हिमालय की ओर हनुमान उन आदमियों में सबसे वीर और अनुभवी थे। उन्हें उसने दक्षिण की ओर भेजा। क्योंकि अनुमान यह था कि रावण सीता को लेकर लंका की ओर गया होगा। हनुमान की मदद के लिए अंगद, जामवन्त, नील, नल इत्यादि वीरों को भी तैनात किया। रामचन्द्र हनुमान से बोले—मुझे आशा है कि सफलता का सेहरा तुम्हारे ही सिर रहेगा।

हनुमान ने कहा—यदि आपका यह आशीर्वाद है तो अवश्य सफल होऊँगा। आप मुझे कोई ऐसी निशानी दे दीजिये, जिसे दिखाकर मैं सीताजी को विश्वास दिला सकूँ।

रामचन्द्र ने अपनी अँगूठी निकालकर हनुमान को दे दी और बोले—यदि सीता से तुम्हारी मुलाकात हो, तो उन्हें समझाकर कहना कि राम और लक्ष्मण तुम्हें बहुत शीघ्र छुड़ाने आयेंगे। जिस प्रकार इतने दिन काटे हैं, उसी प्रकार थोड़े दिन और सब्र करें। उनको ख़ूब ढाढ़स देना कि शोक न करें। यह समय का उलटफेर है। न इस तरह रहा, न उस तरह रहेगा। यदि यह विपत्तियाँ न झेलनी होतीं, तो हमारा वनवास ही क्यों होता। राज्य छोड़कर क्यों जंगलों में मारे-मारे फिरते। हर हालत में ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिये, हम सब उसी की इच्छा के पुतले हैं।

हनुमान अँगूठी लेकर अपने सहायकों के साथ चले। किन्तु कई दिन के बाद जब लंका का कुछ ठीक पता न चला और रसद का सामान सब का सब खर्च हो गया, तो अंगद और उनके कई साथी वापस चलने को तैयार हो गये। अंगद उनका नेता बन बैठा। यद्यपि वह सुग्रीव की आज्ञा का पालन कर रहा था, पर अभी तक अपने पिता का शोक उसके दिल में ताज़ा था। एक दिन उसने कहा—भाइयो, मैं तो अब आगे नहीं जा सकता। न हमारे पास रसद है, न यही ख़बर है कि अभी लंका कितनी दूर है। इस प्रकार घास-पात खाकर हम लोग कितने दिन रहेंगे। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि चाचा सुग्रीव ने हमें

इधर इसलिए भेजा है कि हम लोग भूख-प्यास से मर जायँ और उसे मेरी ओर से कोई खटका न रहे। इसके सिवाय उसका और अभिप्राय नहीं। आप तो वहाँ आनंद से बैठे राज कर रहे हैं और हमें मरने के लिए इधर भेज दिया है। वही रामचन्द्र तो हैं, जिन्होंने मेरे पिता को छल से क़त्ल किया। मैं क्यों उनकी पत्नी की खोज में जान दूँ ? मैं तो अब किष्किन्धा नगर जाता हूँ और आप लोगों को भी यही सलाह देता हूँ।

और लोग तो अङ्गद के साथ लौटने पर लगभग प्रस्तुत-से हो गये ; किन्तु हनुमान ने कहा—जिन लोगों को अपने वचन का ध्यान न हो वह लौट जायँ। मैंने तो प्रण कर लिया है कि सीताजी का पता लगाये बिना न लौटूँगा, चाहे इस कोशिश में जान ही क्यों न देना पड़े। पुरुषों की बात प्राण के साथ है। वह जो वायदा करते हैं, उससे कभी पीछे नहीं हटते। हम रामचन्द्र के साथ अपने कर्तव्य का पालन न करके अपनी समस्त जाति को कलंकित नहीं कर सकते। आप लोग लक्ष्मण के क्रोध से अभिज्ञ नहीं, मैं उनका क्रोध देख चुका हूँ। यदि आप लोग अपना वायदा न पूरा कर सके तो समझ लीजिये कि किष्कंधा का राज्य नष्ट हो जायगा।

हनुमान के समझाने का सबके ऊपर प्रभाव हुआ। अंगद ने देखा कि मैं अकेला ही रहा जाता हूँ, तो उसने भी विप्लव का विचार छोड़ दिया। एक बार फिर सब ने मज़बूत कमर बाँधी और आगे बढ़े। बेचारे दिन भर इधर-उधर भटकते और रात को किसी गुफा में पड़ रहते थे। सीताजी का कुछ पता न चलता था। यहाँ तक कि भटकते हुए एक महीने के करीब गुजर गया। राजा सुग्रीव ने चलते समय कह दिया था कि यदि तुम लोग एक महीने के अन्दर सीताजी का पता लगाकर न लौटोगे तो मैं किसी को जीवित न छोड़ूँगा। और यहाँ यह हाल था कि सीताजी की कुछ खबर ही नहीं। सब-के-सब जीवन से निराश हो गये। समझ गये कि इस बहाने से मरना था। इस तरह लौटकर मारे जाने से तो यह कहीं अच्छा है कि यहीं कहीं डूब मरें।

एक दिन विपत्ति के मारे यह बैठे सोच रहे थे कि किधर जायँ कि

उन्हें एक बूढ़ा साधु आता हुआ दिखाई दिया। बहुत दिनों के बाद इन लोगों को आदमी की सूरत दिखाई दी। सब ने दौड़कर उसे घेर लिया और पूछने लगे—क्यों बाबा, तुमने कहीं रानी सीता को देखा है, कुछ बतला सकते हो वह कहाँ हैं ?

इस साधु का नाम सम्पाति था। वह उस जटायु का भाई था, जिसने सीताजी को रावण से छीन लेने की कोशिश में अपनी जान दे दी थी। दोनों भाई बहुत दिनों से अलग-अलग रहते थे। बोला—हाँ भाई, सीता को लंका का राजा रावण अपने रथ पर उठा ले गया है। कई सप्ताह हुए, मैंने सीताजी को रोते हुए रथ पर जाते देखा था। क्या करूँ, बुढ़ापे से लाचार हूँ, वरना रावण से अवश्य लड़ता। तब से इसी फिक्र में घूम रहा हूँ, कि कोई मिल जाय यो उससे यह समाचार कह दूँ। कौन जाने कब मृत्यु आ जाय। तुम लोग खूब मिले। अब मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

हनुमान ने पूछा—लंका किधर है और यहाँ से कितनी दूर है, बाबा !

सम्पाति बोला—दक्षिण की ओर चले जाओ। वहाँ तुम्हें एक समुद्र मिलेगा। समुद्र के उस पार लंका है। यहाँ से कोई सौ कोस होगा।

यह समाचार सुनकर उस दल के लोग बहुत प्रसन्न हुए। जीवन की कुछ आशा हुई। उसी समय चाल तेज़ कर दी और दो दिन में रात-दिन चलकर सौ कोस की मंज़िल पूरी कर दी। अब समुद्र उनके सामने लहरें मार रहा था। चारों ओर पानी ही पानी। जहाँ तक निगाह जाती, पानी ही पानी नज़र आता था। इन बेचारों ने इतना चौड़ा नद कहाँ देखा था। कई आदमी तो मारे भय के काँप उठे। न कोई नाव थी, न कोई डोंगी, समुद्र में जायँ तो कैसे जायँ। किसी की हिम्मत न पड़ती थी। नल और नील अच्छे इंजीनियर थे, मगर समुद्र में तैरने योग्य नाव बनाने के लिए न कोई सामान था, न समय। इसके अलावा कोई युक्ति न थी कि उनमें से कोई समुद्र में तैरकर लंका में जाय और सीताजी की खबर लाये। अन्त में बूढ़े जामवन्त ने कहा—

क्यों भाइयो, कब तक इस तरह समुद्र को सहमी हुई आँखों से देखते रहोगे ? तुममें कोई इतनी हिम्मत नहीं रखता कि समुद्र को तैरकर लंका तक जाय ?

अंगद ने कहा—मैं तैरकर जा तो सकता हूँ, पर शायद लौटकर न आ सकूँ।

नल ने कहा—मैं तैरकर जा तो सकता हूँ, पर शायद लौटते वक्त आधी दूर आते-आते बेदम हो जाऊँ।

नील बोला—जा तो मैं भी सकता हूँ और शायद यहाँ तक लौट भी आऊँ। मगर लंका में सीताजी का पता लगा सकूँ, इसका मुझे विश्वास नहीं।

इस तरह सबों ने अपने-अपने साहस और बल का अनुमान लगाया। किन्तु हनुमानजी अभी तक चुप बैठे थे। जामवन्त ने उनसे पूछा—तुम क्यों चुप हो, भगतजी ? बोलते क्यों नहीं ? कुछ तुमसे भी हो सकेगा ?

हनुमान ने कहा—मैं लंका तक तैरकर जा सकता हूँ। तुम लोग यहीं बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा करते रहना।

जामवन्त ने हँसकर कहा—इतना साहस होने पर भी तुम अब तक चुप क्यों बैठे थे ?

हनुमान ने उत्तर दिया—केवल इसलिए कि मैं औरों को अपना गौरव और यश बढ़ाने का मौक़ा देना चाहता था। मैं बोल उठता तो शायद औरों को यह खेद होता कि हनुमान न होते तो मैं इस काम को पूरा करके राजा सुग्रीव और राजा रामचन्द्र दोनों का प्यारा बन जाता। जब कोई तैयार न हुआ तो विवश होकर मुझे इस काम का बीड़ा उठाना पड़ा। आप लोग निश्चिन्त हो जायँ। मुझे विश्वास है कि मैं बहुत शीघ्र सफल होकर वापस आऊँगा।

यह कहकर हनुमानजी समुद्र की ओर पुरुषोचित दृढ़ पग उठाते हुए चले।

सुन्दर-कांड

हनुमान् लंका में

रासकुमारी से लंका तक तैरकर जाना सरल काम न था। इस पर दरियाई जानवरों से भी सामना करना पड़ा। किन्तु वीर हनुमान् ने हिम्मत न हारी। संध्या होते-होते वह उस पार जा पहुँचे। देखा कि लंका का नगर एक पहाड़ की चोटी पर बसा हुआ है। उसके महल आसमान से बातें कर रहे हैं। सड़कें चौड़ी और साफ़ हैं। उन पर तरह-तरह की सवारियाँ दौड़ रही हैं। पग-पग पर सज्जित सिपाही खड़े पहरा दे रहे हैं। जिधर देखिये, हीरे-जवाहर के ढेर लगे हैं। शहर में एक भी गरीब आदमी नहीं दिखाई देता। किसी-किसी महल के कलश सोने के हैं, दीवारों पर ऐसी सुन्दर चित्रकारी की हुई है कि मालूम होता है कि सोने की हैं। ऐसा जनपूर्ण और श्रीपूर्ण नगर देखकर हनुमान् चकरा गये। यहाँ सीताजी का पता लगाना लोहे के चने चबाना था। यह तो अब मालूम ही था कि सीता रावण के महल में होंगी। किन्तु महल में प्रवेश कैसे हो? मुख्य द्वार पर संतरियों का पहरा था। किसी से पूछते तो तुरन्त लोगों को उन पर सन्देह हो जाता। पकड़ लिये जाते। सोचने लगे, राज-प्रासाद के अन्दर कैसे घुसूँ? एकाएक उन्हें एक बड़ा छतनार वृक्ष दिखलाई दिया, जिसकी शाखाएँ महल के अन्दर झुकी हुई थीं। हनुमान् प्रसन्नता से उछल पड़े। पहाड़ों में तो वे पैदा ही हुए थे। बचपन ही से पेड़ों पर चढ़ना, उचकना, कूदना सीखा था। इतनी फुरती से पेड़ों पर चढ़ते थे कि बन्दर भी देखकर शरमा जाय। पहरेदारों की आँख बचाकर तुरन्त उस पेड़ पर चढ़ गये और पत्तियों में छिपे बैठे रहे। जब आधी रात हो गई और चारों ओर सन्नाटा छा गया, रावण भी अपने महल में आराम करने चला गया तो वह धीरे से एक डाल पकड़कर महल के अन्दर कूद पड़े।

महल के अन्दर चमक-दमक देखकर हनुमान् की आँखों में चकाचौंध आ गई। स्फटिक की पारदर्शी भूमि थी। उस पर फानूस की किरणें पड़ती थीं, तो वह दम्-दम् करने लगती थी। हनुमान् ने दबे-पाँव

महलों में घूमना शुरू किया। रावण को देखा, एक सोने के पलंग पर पड़ा सो रहा है। उसके कमरे से मिले हुए मन्दोदरी और दूसरी रानियों के कमरे हैं। मन्दोदरी का सौंदर्य देखकर हनुमान् को सन्देह हुआ कि कहीं यही सीताजी न हों। किन्तु विचार आया, सीताजी इस प्रकार इत्र और जवाहर से लदी हुई भला मीठी नींद के मज़े ले सकती हैं? ऐसा संभव नहीं। यह सीताजी नहीं हो सकतीं। प्रत्येक महल में उन्होंने सुन्दर रानियों को मज़े से सोते पाया। कोई कोना ऐसा न बचा, जिसे उन्होंने न देखा हो। पर सीताजी का कहीं निशान नहीं। वह रंजो-ग़म से घुली हुई सीता कहीं दिखाई न दीं। हनुमान् को संदेह हुआ कि कहीं रावण ने सीताजी को मार तो नहीं डाला। जीवित होतीं, तो कहाँ जातीं।

हनुमान् सारी रात इसी असमंजस में पड़े रहे, जब सवेरा होने लगा और कौए बोलने लगे, तो वह उसी पेड़ की डाल से बाहर निकल आये। मगर अब उन्हें किसी ऐसी जगह की ज़रूरत थी, जहाँ वह दिन भर छिप सकें। कल जब वह यहाँ आये थे तो शाम हो गई थी। अँधेरे में किसी ने उन्हें देखा नहीं। मगर सुबह को उनका लिबास और रूप-रंग देखकर निश्चय ही लोग भड़कते और उन्हें पकड़ लेते। इसलिए हनुमान् किसी ऐसी जगह की तलाश करने लगे, जहाँ वह छिपकर बैठ सकें। कल से कुछ खाया न था। भूख भी लगी हुई थी। बाग़ के सिवा और मुफ्त के फल कहाँ मिलते। यही सोचते चले जाते थे कि कुछ दूर पर एक घना बाग़ दिखाई दिया। अशोक के बड़े-बड़े पेड़ हरी-हरी सुन्दर पत्तियों से लदे खड़े थे। हनुमान् ने इसी बाग में भूख मिटाने और दिन काटने का निश्चय किया। बाग में पहुँचते ही एक पेड़ पर चढ़कर फल खाने लगे।

एकाएक कई स्त्रियों की आवाज़ें सुनाई देने लगीं। हनुमान् ने उधर निगाह दौड़ाई तो देखा कि एक परम सुन्दरी स्त्री मैले-कुचैले कपड़े पहने, सिर के बाल खोले, उदास बैठी भूमि की ओर ताक रही है और कई राक्षस स्त्रियाँ उसके समीप बैठी हुई उसे समझा रही हैं। हनुमान्

उस सुन्दरी को देखकर समझ गये कि यही सीताजी हैं। उनका पीला चेहरा, आँसुओं से भीगी हुई आँखें और चिन्तित मुख देखकर विश्वास हो गया। उनके जी में आया कि चलकर इस देवी के चरणों पर सिर रख दूँ और सारा हाल कह सुनाऊँ। वह दरख़्त से उतरना ही चाहते थे कि रावण को बाग में आते देखकर रुक गये। रावण घमण्ड से अकड़ता हुआ सीता के पास जाकर बोला—सीता, देखो कैसा सुहावना समय है, फूलों की सुगन्ध से मस्त होकर हवा झूम रही है। चिड़ियाँ गा रही हैं, फूलों पर भौंरे मँडला रहे हैं। किन्तु तुम आज भी उसी प्रकार उदास और दुःखित बैठी हुई हो। तुम्हारे लिए जो मैंने बहुमूल्य जोड़े और आभूषण भेजे थे, उनकी ओर तुमने आँख उठाकर भी नहीं देखा। न सिर में तेल डाला, न इत्र मला। इसका क्या कारण है? क्या अब भी तुम्हें मेरी दशा पर दया न आई?

सीताजी ने घृणा की दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—अत्याचारी राक्षस, क्यों मेरे घाव पर नमक छिड़क रहा है? मैं तुझसे हज़ार बार कह चुकी कि जब तक मेरी जान रहेगी, अपने पति के प्यारे चरणों का ध्यान करती रहूँगी। मेरे जीते-जी तेरे अपवित्र विचार कभी पूरे न होंगे। मैं तुझसे अब भी कहती हूँ कि यदि अपनी कुशल चाहता है तो मुझे रामचन्द्र के पास पहुँचा दे, और उनसे अपनी भूलों की क्षमा माँग ले। अन्यथा जिस समय उनकी सेना आ जायगी, तुझे भागने की कहीं जगह न मिलेगी। उनके क्रोध की ज्वाला तुझे और तेरे सारे परिवार को जलाकर राख कर देगी। और ख़ूब कान खोलकर सुन ले, कि वह अब यहाँ आया ही चाहते हैं।

रावण यह बातें सुनकर लाल हो गया और बोला—बस, ज़बान सँभाल, मूर्ख स्त्री! मुझे मालूम हो गया कि तेरे साथ नरमी से काम न चलेगा। अगर तू एक निर्बल स्त्री होकर ज़िद कर सकती है, तो मैं लंका का महाराज होकर क्या ज़िद नहीं कर सकता? जिस पुरुष के बल पर तुझे इतना अभिमान है, उसे मैं यों मसल डालूँगा, जैसे कोई कीड़े को मसलता है। तू मुझे सख़्ती करने पर विवश कर रही है, तो मैं भी

सख्ती करूँगा। बस, आज से एक मास का अवकाश तुझे और देता हूँ। अगर उस वक्त भी तेरी आँख न खुली तो फिर या तो तू रावण की रानी होगी या तेरी लाश चील और कौवे नोच-नोचकर खायेंगे।

रावण चला गया, तो राक्षस स्त्रियों ने सीताजी को समझाना आरम्भ किया। तुम बड़ी नादान हो सीता, इतना बड़ा राजा तुम्हारी इतनी खुशामद करता है फिर भी तुम कान नहीं देतीं। अगर वह ज़बरदस्ती करना चाहे तो आज ही तुम्हें अपनी रानी बना ले। मगर कितना नेक है कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहता। उसके साथ तुम्हारी इतनी बेपरवाही उचित नहीं। व्यर्थ रामचन्द्र के पीछे जान दे रही हो। लंका की रानी बनकर जीवन के सुख उठाओ। राम को भूल जाओ। वह अब यहाँ नहीं आ सकते और आ भी जायँ तो राजा रावण का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते।

इन्हीं स्त्रियों में एक का नाम त्रिजटा था। वह बड़ी नेक और पतिव्रता थी और सीताजी को अकेले में ढाढ़स दिया करती थी। उन स्त्रियों की बातें उसे बुरी लगीं। बोली—चुप भी रहो, क्यों व्यर्थ में अपनी ज़बान खराब कर रही हो! रावण की प्रशंसा करते हुए तुम्हें लाज नहीं आती। ऐसे पापी को जो दूसरे की स्त्रियों को बलात् उठा लाता है, तुम नेक और धर्मात्मा कहती हो। उससे बड़ा पापी तो संसार में न होगा।

हनुमान ऊपर बैठे हुए इन स्त्रियों की बातें सुन रहे थे। जब वह सब वहाँ से चली गईं और सीताजी अकेली रह गईं तो हनुमानजी ने ऊपर से रामचन्द्र की अँगूठी उनके सामने गिरा दी। सीताजी ने अँगूठी उठाकर देखी तो रामचन्द्र की थी। शोक और आश्चर्य से उनका कलेजा धड़कने लगा। शोक इस बात का हुआ कि कहीं रावण ने रामचन्द्र को मरवा न डाला हो। आश्चर्य इस बात का था कि रामचन्द्र की अँगूठी यहाँ कैसे आई। वह अँगूठी को हाथ में लिये इसी सोच में बैठी हुई थीं कि हनुमान् पेड़ से उतरकर उनके सामने आये और उनके चरणों पर सिर झुका दिया।

सीताजी ने और भी आश्चर्य में आकर पूछा—तुम कौन हो? क्या यह अँगूठी तुम्हीं ने गिराई है? तुम्हारी सूरत से मालूम होता है कि तुम सज्जन और वीर हो। क्या बतला सकते हो कि तुम्हें यह अँगूठी कहाँ मिली।

हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा—माताजी! मैं श्री रामचंद्रजी के पास से आ रहा हूँ। यह अँगूठी उन्होंने मुझे दी थी। मैं आपको देखकर समझ गया कि आप ही जानकीजी हैं। आपकी खोज में सैकड़ों सिपाही छूटे हुए हैं। मेरा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए।

सीताजी का पीला चेहरा खिल गया। बोलीं—क्या सचमुच तुम मेरे स्वामीजी के पास से आ रहे हो? अभी तक वे मेरी याद कर रहे हैं?

हनुमान्—आपकी याद उन्हें सदैव सताया करती है। सोते-जागते आप ही के नाम की रट लगाया करते हैं। आपका पता अब तक न था। इस कारण से आपको छुड़ा न सकते थे। अब ज्योंही मैं पहुँचकर उन्हें आपका समाचार दूँगा, वह तुरंत लंका पर आक्रमण करने की तैयारी करेंगे।

सीताजी ने चिंतित होकर पूछा—उनके पास इतनी बड़ी सेना है, जो रावण के बल का सामना कर सके?

हनुमान् ने उत्साह के साथ कहा—उनके पास जो सेना है, उसका एक-एक सैनिक एक एक सेना का वध कर सकता है। मैं एक तुच्छ सिपाही हूँ; पर मैं दिखा दूँगा कि लंका की समस्त सेना किस प्रकार मुझसे हार मान लेती है।

सीताजी—रामचंद्र को यह सेना कहाँ मिल गई? मुझसे विस्तृत वर्णन करो, तब मुझे विश्वास आये।

हनुमान्—यह सेना राजा सुग्रीव की है, जो रामचंद्र के मित्र और सेवक हैं। रामचंद्र ने सुग्रीव के भाई बालि को मारकर किष्किंधा का राज्य सुग्रीव को दिला दिया है। इसीलिए सुग्रीव उन्हें अपना उपकारक समझता है। उसने आपका पता लगाकर आपको छुड़ाने में रामचंद्र

की सहायता करने का प्रण कर लिया है। अब आपकी विपत्तियाँ बहुत शीघ्र अन्त हो जायँगी।

सीताजी ने रोकर कहा—हनुमान्! आज का दिन बड़ा शुभ है कि मुझे अपने स्वामी का समाचार मिला। तुमने यहाँ की सारी दशा देखी है। स्वामी से कहना, सीता की दशा बहुत दुःखद है; यदि आप उसे शीघ्र न छुड़ायेंगे तो वह जीवित न रहेगी। अब तक केवल इसी आशा पर वह जीवित है, किन्तु दिन-प्रतिदिन निराशा से उसका हृदय निर्बल होता जा रहा है।

हनुमान् ने सीताजी को बहुत आश्वासन दिया और चलने को तैयार हुए; किंतु उसी समय विचार आया कि जिस प्रकार सीताजी के विश्वास के लिए रामचन्द्र की अँगूठी लाया था, उसी प्रकार रामचंद्र के विश्वास के लिए सीताजी की भी कोई निशानी ले चलना चाहिये। बोले—माताजी! यदि आप उचित समझें तो अपनी कोई निशानी दीजिये जिससे रामचंद्र को विश्वास आ जाय कि मैंने आपके दर्शन पाये हैं।

सीताजी ने अपने सिर की वेणि उतारकर दे दी। हनुमान् ने उसे कमर में बाँध लिया और सीताजी को प्रणाम करके विदा हुए।

लंका-दाह

इस अशोकों के बाग़ से चलते-चलते हनुमान के जी में आया कि तनिक इन राक्षसों की वीरता की परीक्षा भी करता चलूँ। देखूँ, यह सब युद्ध की कला में कितने निपुण हैं। आख़िर रामचंद्रजी इन सबों का हाल पूछेंगे तो क्या बताऊँगा। यह सोचकर उन्होंने बाग़ के पेड़ों को उखाड़ना शुरू किया। तुम्हें आश्चर्य होगा कि उन्होंने वृक्ष कैसे उखाड़े होंगे। हम तो एक पौधा भी जड़ से नहीं उखाड़ सकते। किंतु हनुमान्जी अपने समय के अत्यंत बलवान पुरुष थे। जब उन्होंने हिंदुस्तान से लंका तक समुद्र को तैरकर पार किया, तो छोटे-मोटे पेड़ों का उखाड़ना क्या कठिन था। कई पेड़ उखाड़े। कई पेड़ों की शाखायें

तोड़ डालीं, और फल तो इतने तोड़कर गिरा दिये कि उनका फ़र्श-सा बिछ गया। बाग़ के रक्षकों ने यह हाल देखा तो एकत्रित होकर हनुमान् को रोकने आये। किन्तु यह किसकी सुनते थे। उन सबों को डालियों से मार-मारकर भगा दिया। कई आदमियों को जान से मार डाला। तब बाहर से और कितने ही सिपाही आकर हनुमान् को पकड़ने लगे। मगर आपने उन्हें भी मार भगाया। धीरे-धीरे राजा रावण के पास ख़बर पहुँची कि एक आदमी न जाने किधर से अशोकों के वन में घुस आया है और वन का सत्यानाश किये डालता है। कई मालियों और सैनिकों को मार भगाया है। किसी प्रकार नहीं मानता।

रावण ने क्रोध से दाँत पीसकर कहा—तुम लोग उसे पकड़कर मेरे सामने लाओ।

रक्षक—हुजूर वह इतना बलवान् है कि कोई उसके पास जा ही नहीं सकता।

रावण—चुप रहो नालायको! बाहर का एक आदमी हमारे बाग़ में घुसकर यह तूफ़ान मचा रहा है और तुम लोग उसे गिरफ्तार नहीं कर सकते, बड़े शर्म की बात है।

यह कहकर रावण ने अपने लड़के अक्षयकुमार को हनुमान् को गिरफ्तार कर लाने के लिए भेजा। अक्षयकुमार कई सौ वीरों की सेना लेकर हनुमान् से लड़ने चला। हनुमान् ने उन्हें आते देख एक मोटा-सा वृक्ष उठा लिया और उन आदमियों पर टूट पड़े। पहले ही आक्रमण में कई आदमी घायल हो गये। कुछ भाग खड़े हुए। तब अक्षयकुमार ने ललकारकर कहा—यदि वीर है, तो सामने आ जा! यह क्या गँवारों की तरह सूखी टहनी लेकर घुमा रहा है!

हनुमान् ताल ठोंककर अक्षयकुमार पर झपटे और उसकी टाँग पकड़कर इतनी ज़ोर से पटका कि वह वहीं ठंढा हो गया। और सब आदमी हुर्र हो गये।

रावण को जब अक्षयकुमार के मारे जाने का समाचार मिला तब उसके क्रोध की सीमा न रही। अभी तक उसने हनुमान् को कोई

साधारण सैनिक समझ रखा था। अब उसे ज्ञात हुआ कि यह कोई अत्यन्त वीर पुरुष है। अवश्य इसे रामचन्द्र ने यहाँ सीता का पता लगाने के लिए भेजा है। इस आदमी को ज़रूर दण्ड देना चाहिये। कड़ककर बोला—इस दरबार में इतने सूरमा मौजूद हैं, क्या किसी में भी इतना साहस नहीं कि इस दुष्ट को पकड़कर मेरे सामने लाये? लंका के इस राज्य में एक भी ऐसा आदमी नहीं? मेरे हथियार लाओ, मैं स्वयं जाकर उसे गिरफ्तार करूँगा। देखूँ, उसमें कितना बल है।

सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। रावण का दूसरा पुत्र मेघनाद भी वहाँ बैठा हुआ था। अब तक उसने हनुमान् का सामना करना अपने मर्यादा के विरुद्ध समझा था; रावण को उद्यत देखकर उठ खड़ा हुआ और बोला—उसके वध के लिए मैं क्या कम हूँ, जो आप जा रहे हैं? मैं अभी जाकर उसे बाँधे लाता हूँ। आप यहीं बैठें।

मेघनाद अत्यन्त वीर, साहसी और युद्ध की कला में अत्यन्त निपुण था। धनुष-बाण हाथ में लेकर अशोक-वाटिका में पहुँचा और हनुमान् से बोला—क्यों रे पगले, क्या तेरे कुदिन आये हैं जो यहाँ ऐसा अन्धेर मचा रहा है? हम लोगों ने तुझे यात्री समझकर जाने दिया और तू शेर हो गया। लेकिन मालूम होता है, तेरे सर पर मौत खेल रही है। आ जा, सामने! बाग़ के मालियों और मेरे अल्प-वयस्क भाई को मारकर शायद तुझे घमण्ड हो गया है। आ, तेरा घमण्ड तोड़ दूँ।

हनुमान् बल में मेघनाद से कम न थे; किन्तु उस समय उससे लड़ना अपने हेतु के विरुद्ध समझा। मेघनाद साधारण पुरुष न था। बराबर का मुकाबला था। सोचा, कहीं इसने मुझे मार डाला, तो रामचन्द्र के पास सीताजी का समाचार भी न ले जा सकूँगा। मेघनाद के सामने ताल ठोंककर खड़े तो हुए, पर उसे अपने ऊपर जान-बूझकर विजय पा लेने दिया। मेघनाद ने समझा, मैंने इसे दबा लिया। तुरन्त हनुमान् को रस्सियों से जकड़ दिया और मूँछों पर ताव देता हुआ रावण के सामने आकर बोला—महाराज, यह आपका बन्दी उपस्थित है।

रावण क्रोध से भरा तो बैठा ही था, हनुमान् को देखते ही बेटे के खून का बदला लेने के लिए उसकी तलवार म्यान से निकल पड़ी, निकट था कि रस्सियों में जकड़े हुए हनुमान् की गर्दन पर उसकी तलवार गिरे कि रावण के भाई विभीषण ने खड़े होकर कहा—भाई साहब! पहले इससे पूछिये कि यह कौन है, और यहाँ किस लिए आया है। संभव है ब्राह्मण हो, तो हमें ब्रह्महत्या का पाप लग जाय।

हनुमान् ने कहा—मैं राजा सुग्रीव का दूत हूँ। रामचंद्रजी ने मुझे सीताजी का पता लगाने के लिए भेजा है। मुझे यहाँ सीताजी के दर्शन हो गये। तुमने बहुत बुरा किया कि उन्हें यहाँ उठा लाये। अब तुम्हारी कुशल इसी में है कि सीताजी को रामचंद्रजी के पास पहुँचा दो। अन्यथा तुम्हारे लिए बुरा होगा। तुमने राजा बालि का नाम सुना होगा। उसने तुम्हें एक बार नीचा भी दिखाया था। उसी राजा बालि को रामचंद्रजी ने एक बाण से मार डाला। खर और दूषण की मृत्यु का हाल तुमने सुना ही होगा। उनसे तुम किसी प्रकार जीत नहीं सकते।

यह सुनकर कि यह रामचंद्रजी का दूत है, और सीताजी का पता लगाने के लिए आया है, रावण का खून खौलने लगा। उसने फिर तलवार उठाई, मगर विभीषण ने फिर उसे समझाया—महाराज! राजदूतों को मारना साम्राज्य की नीति के विरुद्ध है। आप इसे और जो दंड चाहें दें, किंतु वध न करें। इसमें आपकी बड़ी बदनामी होगी।

विभीषण बड़ा दयालु, सच्चा और ईमानदार आदमी था। उचित बात कहने में उसकी जबान कभी नहीं रुकती थी। यह रावण को कई बार समझा चुका था कि सीताजी को रामचंद्रजी के पास भेज दीजिये। मगर रावण उसकी बातों की कब परवाह करता था। इस वक्त भी विभीषण की बात उसे बुरी लगी। किंतु साम्राज्य के नियम को तोड़ने का उसे साहस न हुआ। दिल में ऐंठकर तलवार म्यान में रख ली और बोला—तू बड़ा भाग्यवान है कि इस समय मेरे हाथ से बच गया। तू यदि सुग्रीव का दूत न होता तो इसी समय तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालता। तुझ जैसे धृष्ट आदमी का यही दंड है। किंतु मैं

तुझे बिल्कुल बेदाग़ न छोड़ूँगा। ऐसा दंड दूँगा कि तू भी याद करे कि किसी से पाला पड़ा था।

रावण सोचने लगा, इसे ऐसा कौन-सा दंड दिया जाय कि इसकी जान तो न निकले, पर यह भली प्रकार अपमानित और अप्रतिष्ठित हो। इसके साथ ही साँसत भी ऐसी हो कि जीवन-पर्यन्त न भूले। फिर इधर आने का साहस ही न हो। सोचते-सोचते उसे एक अनोखा हास्य सूझा। वह मारे ख़ुशी के उछल पड़ा। इसे बंदर बनाकर इसकी दुम में आग लगा दी जाय और इसका नाच देखा जाय। विचित्र और अनोखा तमाशा होगा। राक्षसों ने ऐसा तमाशा कभी न देखा होगा। बड़ा आनंद रहेगा। हजारों आदमी उसके पीछे 'लेना-लेना' करके दौड़ेंगे और वह इधर-उधर उचकता फिरेगा। तुरंत मेघनाद को आज्ञा दी कि इस आदमी का मुँह रँग दो, इसके शरीर पर भूरे-भूरे रोयें लगा दो और एक लंबी दुम लगाकर अच्छा-खासा लंगूर बना दो। उस दुम में लत्ते बाँधकर तेल में भिगा दो और उसमें आग लगाकर छोड़ दो। शहर में दौंड़ी पिटवा दो कि आज शाम को एक नया, अनोखा और आश्चर्य में डालनेवाला तमाशा होगा। सब लोग अपनी छतों पर से तमाशा देखें।

यह आदेश पाते ही राक्षसों ने हनुमान् को बन्दर बनाना शुरू कर दिया। कोई मुँह रँगता था, कोई शरीर पर रोयें चिपकाता था, कोई दुम लगाता था। दम-के-दम में बन्दर का स्वाँग बनकर खड़ा हो गया। ख़ूब लम्बी दुम थी। फिर लोग चारों तरफ़ से लत्ते ला-लाकर उसमें बाँधने लगे। इधर शहर में दौंड़ी पिट गई। राक्षस लोग जल्दी-जल्दी शाम का खाना खा, अच्छे-अच्छे कपड़े पहन अपनी-अपनी छतों पर डट गये। रावण की सैकड़ों रानियाँ थीं। सब-की-सब गहने-कपड़ों से सज्जित होकर यह तमाशा देखने के लिए सब से ऊँची छत पर जा बैठीं। इतने में शाम भी हो गई। हनुमान् की दुम पर तेल छिड़का जाने लगा। मनो तेल डाल दिया गया। जब दुम खूब तेल से तर हो गई; तो एक आदमी ने उसमें आग लगा दी। लपटें भड़क उठीं। चारो तरफ़ तालियाँ बजने लगीं। तमाशा शुरू हो गया।

हनुमान् अपने इस अपमान और हँसी पर दिल में खूब कुढ़ रहे थे। इससे तो कहीं अच्छा होता अगर उस दुष्ट ने मार डाला होता। दिल में कहा, अगर इस अपमान का बदला न लिया तो कुछ न किया। और वह भी इसी वक्त। ऐसा तमाशा दिखाऊँ कि आयु-पर्य्यन्त न भूले। सारे शहर की होली हो जाय। जब दुम में आग लग गई तो वह एक पेड़ पर चढ़ गये। इस कला में उनका समान न था। पेड़ की एक शाखा राजमहल में झुकी हुई थी। उसी शाखा से कूदकर वह रनिवास में पहुँच गये और एक क्षण में सारा राजमहल जलने लगा। सब लोग छतों पर थे। कोई रोकनेवाला न था। बहुमूल्य कपड़े और सजावट के सामान, फ़र्श, गद्दे, कालीन, परदे, पंखे, इनमें आग लगते क्या देर थी। हनुमान् जिधर से अपनी जलती हुई दुम लेकर निकल जाते थे, उधर ही लपटें उठने लगती थीं।

राजमहल में आग लगाकर हनुमान् बस्ती की तरफ झुके। छतों से छतें मिली हुई थीं। एक घर से दूसरे घर में कूद जाना कठिन न था। घंटे भर में सारा शहर आग के परदे में ढँक गया। चारों तरफ़ कुहराम मच गया। कोई अपना असबाब निकालता था, कोई पानी-पानी चिल्लाता था। कितने ही आदमी जो नीचे न उतर सके, जल-भुन गये। संयोग से उसी समय ज़ोर की हवा चलने लगी, आग और भी भड़क उठी मानो हवा अग्नि देवता की सहायता करने आई है। ऐसा मालूम होता था कि आसमान से आग के तख्ते बरस रहे हैं।

शहर की होली बनाकर हनुमान् समुद्र की तरफ़ भागे और पानी में कूदकर दुम की आग बुझाई। उन्होंने लंका-वासियों को सचमुच विचित्र और अनोखा तमाशा दिखा दिया।

आक्रमण की तैयारी

हनुमान् ने रातों-रात समुद्र को पार किया और अपने साथियों से जा मिले। यह बेचारे घबरा रहे थे कि न जाने हनुमान् पर क्या विपत्ति आई। अब तक नहीं लौटे। अब हम लोग सुग्रीव को क्या मुँह दिखा-

वेंगे। रामचन्द्र के सामने कैसे जायँगे। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि यहीं डूब मरें। इतने ही में हनुमान् जा पहुँचे। उन्हें देखते ही सब के सब खुशी से उछलने लगे। दौड़-दौड़कर उनसे गले मिले और पूछने लगे—कहो भाई, क्या कर आये? सीताजी का कुछ पता चला? रावण से कुछ बात-चीत हुई? हम लोग तो बहुत विकल थे।

हनुमान् ने लंका का सारा हाल कह सुनाया। रावण के महल में जाना, अशोक के वन में सीताजी के दर्शन पाना, वाटिका को उजाड़ना, राक्षसों को मारना, मेघनाद के हाथों गिरफ्तार होना, फिर लंका को जलाना, सारी बातें विस्तार से वर्णन कीं। सब ने हनुमान् की वीरता और कौशल को सराहा और गा-बजाकर सोये। मुह-अँधेरे किष्किन्धापुरी को रवाना हुए। सैकड़ों कोसों की यात्रा थी। पर ये लोग अपनी सफलता पर इतने प्रसन्न थे कि न दिन को आराम करते, न रात को सोते। खाने-पीने की किसी को सुध न थी। शीघ्र से शीघ्र रामचंद्रजी के पास पहुँचकर यह शुभ समाचार सुनाने के लिए अधीर हो रहे थे। आखिर कई दिनों के बाद किष्किन्धा पहाड़ दिखाई दिया। उसी के निकट राजा सुग्रीव का एक बाग़ था। उसका नाम मधुवन था। उसमें बहुत-सी शहद की मक्खियाँ पली हुई थीं। सुग्रीव को जब शहद की जरूरत पड़ती तो उसी बाग़ से लेता था।

जब यह लोग मधुवन के पास पहुँचे तो शहद के छत्ते देखकर उनकी लार टपक पड़ी। बेचारों ने कई दिन से खाना नहीं खाया था। तुरंत बाग़ मे घुस गये और शहद पीना आरम्भ कर दिया। बाग़ के मालियों ने मना किया तो उन्हें खूब पीटा। शहद की लूट मच गई। सुग्रीव को जब समाचार मिला कि हनुमान्, अंगद, जामवंत इत्यादि मधुवन में लूट मचाये हुए हैं, तो समझ गया कि यह लोग सफल होकर लौटे हैं। असफल लौटते तो यह शरारत कब सूझती। तुरन्त उनकी अगवानी करने चल खड़ा हुआ। इन लोगों ने उसे आते देखा तो और भी ऊधम मचाना शुरू किया।

सुग्रीव ने हँसकर कहा—मालूम होता है तुम लोगों ने कई दिन से

मारे खुशी के खाना नहीं खाया है। आओ, तुम्हें गले लगा लूँ।

जब सब लोग सुग्रीव से गले मिल चुके तो हनुमान् ने लंका का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुग्रीव खुशी से फूला न समाया। उसी समय उन लोगों को साथ लेकर रामचन्द्र के पास पहुँचा। रामचन्द्र भी उनकी भाव-भंगी से ताड़ गये कि यह लोग सीताजी का पता लगा लाये। इधर कई दिन से दोनों भाई बहुत निराश हो रहे थे। इन लोगों को देखकर आशा की खेती हरी हो गई।

रामचन्द्र ने पूछा—कहो, क्या समाचार लाये? सीताजी कहाँ हैं? उनका क्या हाल है?

हनुमान् ने विनोद करके कहा—महाराज, कुछ इनाम दिलवाइये तो कहूँ।

राम—धन्यवाद के सिवा मेरे पास और क्या है जो तुम्हें दूँ? जब तक जीवित रहूँगा तुम्हारा उपकार मानूँगा।

हनुमान्—वायदा कीजिये कि मुझे कभी अपने चरणों से विलग न कीजियेगा।

राम—वाह! यह तो मेरे ही लाभ की बात है। तुम जैसे निष्ठावान् मित्र किसको सुलभ होते हैं। हम और तुम सदैव साथ रहें, इससे बढ़कर मेरे लिए प्रसन्नता की और क्या बात हो सकती है? सीताजी क्या लंका में हैं?

हनुमान्—हाँ महाराज, लंका के अत्याचारी राजा रावण ने उन्हें एक बाग़ में कैद कर रखा है और नाना प्रकार के कष्ट दे रहा है। कभी धमकाता है, कभी फुसलाता है, किन्तु वह उसकी तनिक भी परवाह नहीं करतीं। जब मैंने आपकी अँगूठी दी, तो उसे कलेजे स लगा लिया और देर तक रोती रहीं। चलते समय मुझसे कहा कि प्राणनाथ से कहना कि शीघ्र ही मुझे इस कैद से मुक्त करें, क्योंकि अब मुझमें अधिक सहने का बल नहीं है। यह कहकर हनुमान् ने सीताजी की वेणी रामचन्द्रजी के हाथ में रख दी।

रामचन्द्र ने इस वेणि को देखा तो परवश उनकी आँखों से आँसू

जारी हो गये। उसे बार-बार चूमा और आँखों से लगाया। फिर बड़ी देर तक सीताजी ही के सम्बन्ध में बातें पूछते रहे। इन बातों से उनका जी ही न भरता था। वह कैसे कपड़े पहने हुए थीं ? बहुत दुबली तो नहीं हो गई हैं? बहुत रोया तो नहीं करतीं? हनुमान्‌जी प्रत्येक बात का उत्तर देते जाते थे और मन में सोचते थे, इस स्त्री और पुरुष में कितना प्रेम है!

थोड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा—अब आक्रमण करने में देर न करनी चाहिये। तुम अपनी सेना को कब तक तैयार कर सकोगे ?

सुग्रीव ने कहा—महाराज! मेरी सेना तो पहले ही से तैयार है, केवल आपके आदेश की देर है।

राम—युद्ध के सिवा अब और कोई चारा नहीं है।

सुग्रीव—ईश्वर ने चाहा तो हमारी जीत होगी।

राम—औचित्य की सदैव जीत होती है।

विभीषण

हनुमान् के चले जाने के बाद राक्षसों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा, जिस सेना का एक सैनिक इतना बलवान् और वीर है, उस सेना से भला कौन लड़ेगा। उस सेना का नायक कितना वीर होगा। एक आदमी ने आकर सारी लंका में हलचल मचा दी। यदि वीर मेघनाद स्वयं न जाता तो सम्भवतः हमारी सारी सेना मिलकर भी उसे न पकड़ सकती। कितना ग़ज़ब का चतुर आदमी था। दुम तो लगाई गई उसकी हँसी उड़ाने के लिए, उसका बदला उसने यह दिया कि सारी लंका जला डाली; और कोई भी उसे न पकड़ सका। साफ़ निकल गया। अब रामचन्द्र की सेना दो-चार दिन में लंका पर चढ़ आयेगी। राजा रावण और राजकुमार मेघनाद कितने ही वीर हों, किन्तु सेना का सामना नहीं कर सकते। इस एक स्त्री के लिए रावण सारे देश को नष्ट करना चाहता है। यदि वह रामचन्द्र के पास

न भेज दी गई और उनसे क्षमा न माँगी गई, तो अवश्य लंका पर विपत्ति आयेगी।

दूसरे दिन शहर के ख़ास-ख़ास आदमी रावण की सेवा में उपस्थित हुए और विनय की—महाराज! आपके राज्य में हम लोग अब तक बड़े आराम और चैन से रहे, अब हमें ऐसा भय हो रहा है कि इस देश पर कोई विपत्ति आनेवाली है। हमारी आपसे यही प्रार्थना है कि आप सीताजी को रामचन्द्र के पास पहुँचा दें और देश को इस आनेवाली विपत्ति से बचा लें।

रावण भी कल रात से इसी चिन्ता में पड़ा हुआ था; किन्तु अपनी प्रजा के सामने वह अपने दिल की कमज़ोरी को प्रकट न कर सका। उसे इसका धैर्य न था कि कोई उसके कार्यों पर आपत्ति करे। आपत्ति सुनते ही वह आपे से बाहर हो जाता था। उसका विचार था कि प्रजा का काम है राजा की आज्ञा मानना, न कि उसके कामों पर आपत्ति करना। क्रोध से बोला—तुम्हें ऐसी प्रार्थना करते हुए लाज नहीं आती? जिस आदमी ने मेरी बहन की मर्य्यादा धूल में मिलाई, उससे इसका बदला न लूँ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। रावण इतना शीलरहित और निर्लज्ज नहीं है। सीता मेरी है और मेरी रहेगी। तुम लोग जाकर अपना काम देखो। देश की रक्षा का मैं उत्तरदायी हूँ। मैं तुमसे इस विषय में कोई परामर्श लेना नहीं चाहता।

यह फटकार सुनकर सब लोग चुप हो गये। सभी रावण के क्रोध से डरते थे; किन्तु विभीषण प्रजा का सच्चा मित्र था और न्यायोचित बात कहने में उसकी ज़बान कभी न रुकती थी। बोला—महाराज! राजा का धर्म है कि जब प्रजा को पथभ्रष्ट होते देखे तो उसे दंड दे, उसी प्रकार प्रजा का भी धर्म है कि जब राजा को पथभ्रष्ट होते देखे तो समझाये। आपको रामचन्द्र से अपमान का बदला लेना था तो उन पर आक्रमण करते। उस समय सारा देश आपका साथ देता। सीताजी को यहाँ लाकर क़ैद कर रखने में आपने अन्याय किया है और

हमारा कर्तव्य है कि हम आपको समझावें। अगर आपने सीताजी को न वापस किया तो लंका पर अवश्य विपत्ति आयेगी।

रावण ने जब देखा कि उसका भाई भी प्रजा का पक्ष ले रहा है, तो और भी क्रुद्ध होकर बोला—विभीषण, तुम पूजा करनेवाले, पोथी-पुराण के कीड़े हो, राज्य के विषय में ज़बान खोलने का तुम्हें अधिकार नहीं। चुप रहो, मैं तुमसे अधिक योग्य हूँ।

विभीषण—मैं आपको यह जता देना चाहता हूँ कि इस लड़ाई में आपका साथ प्रजा कदापि न देगी।

रावण की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। गरजकर बोला—मैं जो कुछ कहूँ या करूँ, प्रजा को मानना पड़ेगा।

विभीषण ने जोश में आकर कहा—कदापि नहीं। पाप के काम में प्रजा आपका साथ नहीं दे सकती।

अब रावण से सहन न हो सका। उसने उठकर विभीषण को इतने ज़ोर से लात मारी कि वह कई पग दूर जा गिरा; और बोला—निकल जा मेरे राज्य से! इसी वक़्त निकल जा! मैं तुझ-जैसे देशद्रोही और धोखेबाज का मुँह नहीं देखना चाहता। तू मेरा भाई नहीं, मेरा शत्रु है। मुझे ज्ञात न था कि तू अपनी कुटी में बैठा हुआ प्रजा को मेरे विरुद्ध भड़काता रहता है, अन्यथा आज तू मेरे सामने इस तरह ज़बान न चलाता। फिर कभी मेरे राज्य में पैर न रखना, वरना जान से हाथ धोयेगा।

विभीषण ने उठकर कहा—महाराज, आप मेरे बड़े भाई हैं, इसलिए मैंने आपको समझाने का साहस किया था; उसका आपने मुझे यह दंड दिया। आपकी आज्ञा सिर-आँखों पर। मैं जाता हूँ। आप फिर मेरा मुँह न देखेंगे, किन्तु इतना फिर कहता हूँ कि आप को एक दिन पछताना पड़ेगा। और उस समय आपको अभागे विभीषण की बात याद आयेगी।

आक्रमण

विभीषण यहाँ से अपमानित होकर सुग्रीव की सेना में पहुँचा और सुग्रीव से अपना सारा वृत्तान्त कहा। सुग्रीव ने रामचन्द्र को उसके

आने की सूचना दो। रामचन्द्र ने विचार किया कि कहीं यह रावण का भेदी न हो। हमारी सेना की दशा देखने के लिए आया हो। इसे तुरन्त सेना से निकाल देना चाहिये। अंगद, जामवंत और दूसरे नायकों ने भी यही परामर्श दिया। उस समय हनुमान् बोले—आप लोग इस आदमी के बारे में किसी प्रकार का संदेह न करें। लंका में यदि कोई सच्चा और सज्जन पुरुष है, तो वह विभीषण है। जिस समय सारा दरबार मेरा शत्रु था, उस समय इसी आदमी ने मेरी जान बचाई थी। इसे अवश्य रावण ने राज्य से निकाल दिया है। वह अब आपकी शरण में आया है। इससे शील-रहित व्यवहार करना उचित नहीं। आखिर रामचन्द्र का सन्देह दूर हो गया। उन्होंने उसी समय विभीषण को बुलाया और बड़े तपाक से मिले।

विभीषण बोला—महाराज! आपसे मिलने की बहुत दिनों से आकांक्षा थी, वह आज पूरी हुई। मैं अपने भाई रावण के हाथों बहुत अपमानित होकर आपकी शरण आया हूँ। अब आप ही मेरा बेड़ा पार लगाइये। रावण ने मुझे इतनी निर्दयता से निकाला है, जैसे कोई कुत्ते को भी न निकालेगा। अब मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता।

रामचन्द्र ने कहा—किन्तु निरपराध तो कोई अपने नौकर को भी नहीं निकालता। सगे भाई को कैसे निकालेगा।

विभीषण—महाराज! मेरा अपराध केवल इतना ही था कि मैंने रावण से वह बात कही, जो उसे पसन्द न थी। मैंने उसे समझाया था कि सीताजी को रामचन्द्र के पास पहुँचा दो। यह बात उसे तीर की तरह लग गई। जो आदमी वासना का दास हो जाता है उसे भले और बुरे का ज्ञान नहीं रहता। वह अपने बारे में सच्ची बात सुनना कभी पसन्द नहीं करता।

रामचन्द्र ने विभीषण को बहुत आश्वासन दिया और वादा किया कि रावण को मारकर लंका का राज्य तुम्हें दूँगा। उसी समय विभीषण को राजतिलक भी दे दिया। विभीषण ने भी हर हालत में रामचन्द्र की सहायता करने का पक्का वादा किया।

दूसरे दिन से लंका पर चढ़ाई करने की तैयारियाँ शुरू हो गईं और सेना समुद्र के किनारे आकर समुद्र को पार करने की युक्ति सोचने लगी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि एक पुल बनाया जाय। नल और नील बड़े होशियार इंजीनियर थे। उन्होंने पुल बनाना प्रारम्भ किया।

उधर रावण को जब खबर मिली कि विभीषण रामचन्द्र से जा मिला, तो उसने दो जासूसों को सुग्रीव की सेना का हाल-चाल मालूम करने के लिए भेजा। एक का नाम था शुक, दूसरे का सारण। दोनों वेष बदलकर सुग्रीव की सेना में आये और प्रत्येक बात की छान-बीन करने लगे। संयोग से उन पर विभीषण की दृष्टि पड़ गई। तुरंत पहचान गये। उन्हें पकड़कर रामचंद्र के सामने उपस्थित कर दिया। दोनों जासूस मारे भय के काँपने लगे क्योंकि रीति के अनुसार उन्हें मृत्यु का दण्ड मिलना निश्चित था; पर रामचन्द्र को उनपर दया आ गई। उन्हें बुलाकर कहा—तुम लोग डरो मत, हम तुम्हें कोई दंड न देंगे। तुम खुशी से हरएक बात की जाँच कर लो। कहो तो अपनी सेना की ठीक-ठीक गिनती बतला दूँ, अपना रसद-सामान दिखला दूँ। अगर देख-भाल चुके हो तो लौट जाओ, और यदि अभी देखना शेष हो तो मैं तुम्हें सहर्ष अनुमति देता हूँ, खूब भली प्रकार देख-भाल लो।

दोनों बहुत लज्जित हुए और जाकर रावण से बोले—महाराज! आप रामचंद्र से लड़ाई न करें। वह बड़े साहसी हैं। आप उन पर विजय नहीं पा सकते। उनकी सेना का एक-एक नायक हमारे एक-एक सेना के लिए पर्याप्त है। किन्तु रावण तो अपने बल के नशे में अन्धा हो रहा था। वह किसी के परामर्श को कब ध्यान में लाता था। बोला—तुम दोनों देशद्रोही हो। मेरे सामने से निकल जाओ। मैं ऐसे साहस-हीनों की सूरत देखना नहीं चाहता।

किंतु जब उसे ज्ञात हुआ कि रामचंद्र ने समुद्र पर पुल बाँध लिया तो उसका नशा हिरन हो गया। उस दिन उसे सारी रात नींद नहीं आई।

लंका-कांड

रावण के दरबार में अंगद

रामचन्द्र ने समुद्र को पार करके लंका पर घेरा डाल दिया। दुर्ग के चारों द्वारों पर चार बड़े-बड़े नायकों को खड़ा किया। सुग्रीव को सारी सेना का सेनापति बनाया। आप और लक्ष्मण सुग्रीव के साथ हो गये। तेज़ दौड़नेवालों को चुन-चुनकर समाचार लाने और ले जाने के लिए नियुक्त किया। जिस नायक को कोई आज्ञा देनी होती, इन्हीं आदमियों द्वारा कहला भेजते थे। नगर के चारों द्वार बन्द हो गये। राक्षसों का बाहर निकलना दुर्गम हो गया। रसद का बाहर के देहातों से आना बन्द हो गया। लोग अन्दर भूखों मरने लगे।

रावण ने सोचा, अब तो रामचंद्र की सेना लंका पर चढ़ आई। मालूम नहीं लड़ाई का फल क्या हो। एक बार सीता को सम्मत करने की अन्तिम चेष्टा कर लेनी चाहिये। अबकी उसने धमकी के बदले छल से काम लेने का निश्चय किया। एक कुशल कारीगर से रामचंद्र की तस्वीर से मिलता-जुलता एक सिर बनवाया। वैसे ही धनुष और बाण बनवाये और इन चीज़ों को सीताजी के सामने ले जाकर बोला—यह लो, तुम्हारे पति का सिर है, जिस पर तुम जान देती थीं। मेरी सेना के एक आदमी ने उन्हें लड़ाई में मार डाला है और उनका सिर काट लाया है। रावण के बल का अनुमान तुम इसी से कर सकती हो। अब मेरा कहना मानो। मेरी रानी बन जाओ।

सीता धोखे में आ गईं। सिर पीट-पीटकर रोने लगीं। संसार उनकी आँखों में अँधेरा हो गया। संयोग से विभीषण की पत्नी श्रमा उस समय अशोक वाटिका में मौजूद थी। सीताजी का शोक-संताप सुनकर वह दौड़ी हुई आई और पूछने लगी, क्या बात है? रावण ने देखा, अब भेद खुलना चाहता है, तो तुरन्त वह बनावटी सिर और धनुष-बाण लेकर वहाँ से चल दिया। सीताजी ने रो-रोकर श्रमा से यह

दुर्घटना बयान की। श्रमा हँसकर बोली—बहन, यह सब रावण की दग़ाबाज़ी है। वह सर बनावटी होगा। तुम्हें छलने के लिए रावण ने यह चाल चली है। रामचंद्र तो दुर्ग के चारों ओर घेरा डाले हुए हैं। लंका में खलबली मची हुई है। कोई दुर्ग के बाहर नहीं निकल सकता। यहाँ किस में इतना बल है, जो रामचन्द्र से लड़ सके। उनके एक साधारण दूत ने लंकावालों के छक्के छुड़ा दिये, भला उन्हें कौन मार सकता है। श्रमा की बातों से सीताजी को आश्वासन मिला। समझ गईं, यह रावण की दुष्टता थी।

उधर दुर्ग पर घेरा डाल करके रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा—एक बार फिर रावण को समझाने की चेष्टा करनी चाहिये। यदि समझाने से मान जाय तो रक्तपात क्यों हो। विचार हुआ कि अंगद को दूत बनाकर भेजा जाय। अंगद ने बड़ी प्रसन्नता से यह बात स्वीकार कर ली। रावण अपने सभासदों के साथ दरबार में बैठा था कि अंगद जा धमके और ऊँची आवाज़ से बोले—ऐ राक्षसों के राजा रावण! मैं राजा रामचंद्र का दूत हूँ। मेरा नाम अंगद है। मैं राजा बालि का पुत्र हूँ। मुझे राजा रामचंद्र ने यह कहने के लिए भेजा है कि या तो आज ही सीताजी को वापस कर दो, या किले के बाहर निकलकर युद्ध करो।

रावण घमंड से अकड़कर बोला—जाकर अपने छोकरे राजा से कह दे कि रावण उससे लड़ने को तैयार बैठा हुआ है। सीता अब यहाँ से नहीं जा सकती। उसका विचार छोड़ दें अन्यथा उनके लिए अच्छा न होगा। राक्षसों की सेना जिस समय मैदान में आयेगी, सुग्रीव और हनुमान् दुम दबाकर भागते दिखाई देंगे। राक्षसों से अभी रामचंद्र का पाला नहीं पड़ा है। हमने इन्द्र तक से लोहा मनवा लिया है। यह पहाड़ी चूहे किस गिनती में हैं।

अंगद—जिन लोगों को तुम पहाड़ी चूहे कहते हो, वह तुम्हारी एक-एक सेना के लिए अकेले काफ़ी हैं। यदि तुम उनके बल की परीक्षा लेना चाहते हो, तो उन्हीं पहाड़ी चूहों में से एक तुच्छ चूहा तुम्हारे

दरबार में खड़ा है, उसकी परीक्षा कर लो। खेद है कि इस समय मैं राजदूत हूँ और दूत हथियार से काम नहीं ले सकता, अन्यथा इसी समय दिखा देता कि पहाड़ी चूहे किस ग़ज़ब के होते हैं। है इस दरबार में कोई योद्धा, जो मेरे पैर को पृथ्वी से हटा दे! जिसे दावा हो निकल आये।

अंगद की यह ललकार सुनकर कई सूरमा उठे और अंगद का पैर उठाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया, किन्तु जौ भर भी न हटा सके। अपना-सा मुँह लेकर अपनी-अपनी जगह पर जा बैठे। तब रावण स्वयं सिंहासन से उठा और अंगद के पैर पर झुककर उठाना चाहता था कि अंगद ने पैर खींच लिया और बोले—अगर पैरों पर सिर झुकाना है तो रामचन्द्र के पैरों पर सिर झुकाओ। मेरे पैर छूने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। रावण लज्जित होकर अपनी जगह पर जा बैठा।

अंगद अपना संदेश सुना ही चुके थे। जब उन्हें ज्ञात हो गया कि रावण पर किसी के समझाने का प्रभाव न होगा, तो वह रामचंद्र के पास लौट आये और सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

मेघनाद

आखिर दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ गया। दिन भर तलवारें चलती रहीं। रात को भी लड़नेवालों ने दम न लिया। मृत शरीरों के ढेर लग गये। रक्त की नदियाँ बह गईं। रामचन्द्र की सेना इतनी वीरता से लड़ी कि राक्षसों की हिम्मत टूट गई। रावण जिस सेना को भेजता, वही घण्टे-दो-घण्टे में जान लेकर भागती। यहाँ तक कि उसने झल्लाकर अपने लड़के मेघनाद को भेजा। मेघनाद बड़ा वीर था। उसे इन्द्रजीत का उपनाम मिला हुआ था। राक्षसों को उस पर गर्व था।

मेघनाद के क्षेत्र में आते ही लड़ाई का रंग बदल गया। कहाँ तो राक्षस लोग मैदान से भाग रहे थे, कहाँ अब रामचंद्र की सेना में भगदड़ पड़ गई। मेघनाद ने बाणों की ऐसी वर्षा की कि आकाश

काला हो गया। लक्ष्मण ने अपनी सेना को दबते देखा तो धनुष और बाण लेकर मैदान में निकल आये। मेघनाद लक्ष्मण को देखकर और भी उत्साह से लड़ने लगा और ललकारकर बोला—आज तुम्हारी मृत्यु मेरे हाथों लिखी है। तुमसे लड़ने की बहुत दिनों से कामना थी। आज वह पूरी हो गई। लक्ष्मण ने उत्तर दिया—हार और जीत ईश्वर के हाथ है। डींग मारना वीरों का काम नहीं। किन्तु सम्भवत: तुम भी जीवित घर न लौटोगे। मेघनाद ने जोश में आकर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र काम में लाने प्रारम्भ किये। कभी कोई विषैला बाण चला देता, कभी गदा लेकर पिल पड़ता। किन्तु लक्ष्मण भी कम वीर न थे। वह उसके सारे आक्रमणों को अपने बाणों से व्यर्थ कर देते थे। यहाँ तक कि उन्होंने उसके रथ, रथवान्, घोड़े, सबको बाणों से छेद डाला। मेघनाद पैदल लड़ने लगा। अब उसे अपनी जान बचाना कठिन हो गया। चाहता था कि तनिक दम लेने का अवकाश मिले तो दूसरा रथ लाऊँ; मगर लक्ष्मण इतनी तेज़ी से बाण चलाते थे कि उसे हिलने का भी अवकाश न मिलता था। आखिर उसने भयानक होकर शक्ति-बाण चला दिया। यह बाण इतना घातक था कि इसका घायल तुरन्त मर जाता था। यह बाण लगते ही लक्ष्मण मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। मेघनाद प्रसन्नता से मतवाला हो गया। उसी समय भागा हुआ रावण के पास गया और बोला—दो भाइयों में से एक को तो मैंने ठण्ढा कर दिया। ऐसा शक्ति बाण मारा है कि बच नहीं सकता। कल दूसरे भाई को मार लूँगा। बस, युद्ध का अन्त हो जायगा। रावण ने बेटे को छाती से लगा लिया।

उधर रामचंद्र की सेना में कुहराम मच गया। हनुमान् ने मूर्च्छित लक्ष्मण को गोद में उठाया और रामचन्द्र के पास लाये। राम ने लक्ष्मण की यह दशा देखी तो बलात् आँखों से आँसू जारी हो गये। रो-रोकर कहने लगे—हाय लक्ष्मण! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये? हाय! मुझे क्या ज्ञात था कि तुम यों मेरा साथ छोड़ दोगे, नहीं तो मैं पिता की आज्ञा को रद्द कर देता, कभी वन की ओर पग न उठाता।

अब मैं कौन मुँह लेकर अयोध्या जाऊँगा। पत्नी के पीछे भाई की जान गँवाकर किसको मुँह दिखाऊँगा। पत्नी तो फिर भी मिल सकती है, पर भाई कहाँ मिलेगा। हाय! मैंने सदैव के लिए अपने माथे पर कलंक लगा लिया। जामवंत अभी तक कहीं लड़ रहा था। राम का विलाप सुनकर दौड़ा हुआ आया और लक्ष्मण को ध्यान से देखने लगा। बूढ़ा अनुभवी आदमी था। कितनी ही लड़ाइयाँ देख चुका था। बोला— महाराज! आप इतने निराश क्यों होते हैं? लक्ष्मणजी अभी जीवित हैं। केवल मूर्च्छित हो गये हैं। विष सारे शरीर में दौड़ गया है। यदि कोई चतुर वैद्य मिल जाय तो अभी जहर उतर जाय और यह उठ बैठें। वैद्य की तलाश करनी चाहिये। विभीषण ने कहा—शहर में सुखेन नाम का एक वैद्य रहता है। विष की चिकित्सा करने में वह बहुत दक्ष है। उसे किसी प्रकार बुलाना चाहिये। हनुमान् ने कहा—मैं जाता हूँ, उसे लिये आता हूँ। विभीषण से सुखेन के मकान का पता पूछकर वह वेश बदलकर शहर में जा पहुँचे और सुखेन से यह हाल कहा। सुखेन ने कहा—भाई मैं वैद्य हूँ। रावण के दरबार से मेरा भरण-पोषण होता है। उसे यदि ज्ञात हो जायगा कि मैंने लक्ष्मण की चिकित्सा की है, तो मुझे जीवित न छोड़ेगा।

हनुमान् ने कहा—आपको ईश्वर ने जो निपुणता प्रदान की है, उससे हरएक आदमी को लाभ पहुँचाना आपका कर्तव्य है। भय के कारण कर्तव्य से मुँह मोड़ना आप-जैसे वयोवृद्ध के लिए उचित नहीं।

सुखेन निरुत्तर हो गया। उसी समय हनुमान् के साथ चल खड़ा हुआ। बुढ़ापे के कारण वह तेज़ न चल सकता था, इसलिए हनुमान् ने उसे गोद में उठा लिया और भागे हुए अपनी सेना में आ पहुँचे। सुखेन ने लक्ष्मण की नाड़ी देखी, शरीर देखा और बोला—अभी बचने की आशा है। संजीवनी बूटी मिल जाय तो बच सकते हैं। किन्तु सूर्य निकलने के पहले बूटी यहाँ आ जानी चाहिये। अन्यथा जान न बचेगी।

जामवंत ने पूछा—संजीवनी बूटी मिलेगी कहाँ?

सुखेन बोला—उत्तर की ओर एक पहाड़ है, वहीं यह बूटी मिलेगी।

बारह घंटे के अन्दर वहाँ जाना और बूटी खोजकर लाना सरल काम न था। सब एक-दूसरे का मुँह ताकते थे। किसी को साहस न होता था कि जाने को तैयार हो। आखिर रामचन्द्र ने हनुमान् से कहा—मित्र! यह कठिनाई तुम्हीं सरल बना सकते हो। तुम्हारे सिवा मुझे दूसरा कोई दिखाई नहीं देता। हनुमान् को आज्ञा मिलने की देर थी। सुखेन से बूटी का पता पूछा और आँधी की तरह दौड़े। कई घंटों में वे उस पहाड़ पर जा पहुँचे; किन्तु रात के समय बूटी की पहचान न हो सकी। बहुत-सी घास-पात एकत्रित थी। हनुमान् ने उन सबों को उखाड़ लिया और उल्टे पैरों लौटे।

इधर सब लोग बैठे हनुमान् की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक-एक पल की गिनती की जा रही थी। अब हनुमान् अमुक स्थान पर पहुँचे होंगे, अब वहाँ से चले होंगे, अब पहाड़ पर पहुँचे होंगे। इस प्रकार अनुमान करते-करते तड़का हो गया किन्तु हनुमान् का कहीं पता नहीं। रामचंद्र घबराने लगे। एक घण्टे में हनुमान् न आ गये तो अनर्थ हो जायगा। कई आदमी उन्हें देखने के लिए छूटे, कई आदमी वृक्षों पर चढ़कर उत्तर की ओर दृष्टि दौड़ाने लगे, पर हनुमान् का कहीं निशान नहीं! अब केवल आधे घण्टे की और अवधि है। इधर लक्ष्मण की दशा पल-पल पर खराब होती जाती थी। रामचन्द्र निराश होकर फिर रोने लगे कि एकाएक अंगद ने आकर कहा—महाराज! हनुमान् दौड़ा चला आ रहा है। बस आया ही चाहता है। रामचन्द्र का चेहरा चमक उठा। वह अधीर होकर स्वयं हनुमान् की ओर दौड़े और उसे छाती से लगा लिया। हनुमान् ने घास-पात का एक ढेर सुखेन के सामने रख दिया। सुखेन ने इसमें से संजीवनी बूटी निकाली और तुरन्त लक्ष्मण के घाव पर इसका लेप किया। बूटी ने अक्सीर का काम किया। देखते-देखते घाव भरने लगा। लक्ष्मण की आँखें खुल गईं। एक घण्टे में वह उठ बैठे और दोपहर तक तो बातें करने लगे। सेना में हर्ष के नारे लगाये गये।

कुम्भकर्ण

रावण ने जब सुना कि लक्ष्मण स्वस्थ हो गये तो मेघनाद से बोला—लक्ष्मण तो शक्ति-बाण से भी न मरा। अब क्या युक्ति की जाय। मैंने तो समझा था, एक का काम तमाम हो गया, अब एक ही और बाक़ी है किंतु दोनों-के-दोनों फिर सँभल गये।

मेघनाद ने कहा—मुझे भी बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि लक्ष्मण कैसे बच गया। शक्ति-बाण का घाव तो घातक होता है। इक्कीस घंटे के अन्दर आदमी मर जाता है। अवश्य उन लोगों को संजीवनी बूटी मिल गई। ख़ैर, फिर समझूँगा, जाते कहाँ हैं। आज ही दोनों का ढेर कर देता, लेकिन कल का थका हुआ हूँ। मैदान में न जा सकूँगा। आज चाचा कुंभकर्ण को भेज दीजिये।

कुम्भकर्ण रावण का भाई था। ऐसा डील-डौल दूसरे सूरमा राक्षसों में न था। उसे देखकर हाथी का आभास होता था। वीर ऐसा था कि कोई उसका सामना करने का साहस न कर सकता था। किंतु जितना ही वह वीर था, उतना ही प्रमादी और विलासी था। रात-दिन शराब के नशे में मस्त पड़ा रहता। लंका पर आक्रमण हो गया, हज़ारों आदमी मारे जा चुके, पर उसे अब तक कुछ ख़बर न थी कि कहाँ क्या हो रहा है। रावण उसके पास पहुँचा तो देखा कि वह उस समय भी बेहोश पड़ा हुआ है। शराब की बोतलें सामने पड़ी हुई थीं। रावण ने उसका कंधा पकड़कर ज़ोर से हिलाया, तब उसकी आँखें खुलीं। बोला—कैसे आराम की नींद ले रहा था, आपने व्यर्थ जगा दिया।

रावण ने कहा—भैया, अब सोने का समय नहीं रहा। रामचन्द्र ने लंका पर घेरा डाल लिया। हमारे कितने ही आदमी काम आ चुके। मेघनाद कल लड़ा था, पर आज थका हुआ है। अब तुम्हारे सिवा और कोई दूसरा सहायक नहीं दिखाई देता।

यह सुनते ही कुम्भकर्ण सँभलकर उठ बैठा। हथियार बाँधे और मैदान की ओर चल खड़ा हुआ। उसे मैदान में देखकर हनुमान्,

अंगद, सुग्रीव सब-के-सब दहल उठे। आदमी क्या पूरा देव था। साधारण सैनिक तो उसकी भयानक आकृति ही देखकर भाग खड़े हुए। कितने ही नायकों को उसने आहत कर दिया। आखिर रामचन्द्र स्वयं उससे लड़ने को तैयार हुए। उन्हें देखते ही कुम्भकर्ण ने भाले का वार किया। मगर रामचन्द्र ने वार खाली दिया और दो तीर इतनी फुर्ती से चलाये कि उसके दोनों हाथ कट गये। तीसरा तीर उसके सीने में लगा। काम तमाम हो गया। राक्षस-सेना ने अपने नायक को गिरते देखा तो भाग खड़े हुए। इधर रामचन्द्र की सेना में खुशी मनाई जाने लगी।

रावण को जब यह समाचार मिला तो सिर पीटकर रोने लगा। कुम्भकर्ण से उसे बड़ी आशा थी। वह धूल में मिल गई। भाई के शोक में बड़ी देर तक विलाप करता रहा।

मेघनाद का मारा जाना

दूसरे दिन मेघनाद बड़े सजधज से मैदान में आया। उसने दोनों भाइयों को मार गिराने का निश्चय कर लिया था। सारी रात देवी की पूजा करता रहा था। उसे अपने बल और शौर्य का बड़ा अभिमान था। रावण की सारी आशायें आज ही की लड़ाई पर निर्भर थीं। लंका में पहले ही से विजय का उत्सव मनाने की तैयारियाँ होने लगीं। मेघनाद ने मैदान में आकर डंके पर चोट दिलवाई तो विभीषण ने उसके सामने जाकर कहा—मेघनाद, मैं जानता हूँ कि बल और साहस में तुम अपना समान नहीं रखते, किंतु औचित्य की सदैव जीत हुई है और सदैव होगी। मेरा कहना मानो, चलकर रामचंद्र से संधि कर लो। वह तुम्हें क्षमा कर देंगे।

मेघनाद ने क्रोध से आँखें निकालकर कहा—चचा साहब, तुम्हें लाज नहीं आती कि मुझे समझाने आये हो! देशद्रोह से बढ़कर संसार में दूसरा अपराध नहीं। जो आदमी शत्रु से मिलकर अपने घर और अपने देश का अहित करता है, उसकी सूरत देखना भी पाप है। आप मेरे सामने से चले जाइये।

विभीषण तो उधर लज्जित होकर चला गया, इधर लक्ष्मण ने सामने आकर मेघनाद को युद्ध का निमंत्रण दिया। लक्ष्मण को देखकर मेघनाद बोला—अभी दो-चार दिन घाव की मरहम-पट्टी और करवा लेते, कहीं आज घाव फिर न ताज़ा हो जाय। जाकर अपने बड़े भाई को भेज दो।

लक्ष्मण ने धनुष पर बाण चढ़ाकर कहा—ऐसे-ऐसे घावों की वीर लोग लशमात्र चिन्ता नहीं करते। आज एक बार फिर हमारी और तुम्हारी हो जाय। तनिक देख लो कि शेर घायल होकर कितना भयावना हो जाता है। बड़े भाई साहब का मुक़ाबला तो तुम्हारे पिता ही से होगा।

दोनों वीरों ने तीर चलाने शुरू कर दिये। घन-घन, तन-तन की आवाज़ें आने लगीं। मेघनाद पहले तो विजयी हुआ, लक्ष्मण का उसके वारों को काटना कठिन हो गया, किंतु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, लक्ष्मण सँभलते गये, और मेघनाद कमज़ोर पड़ता जाता था, यहाँ तक कि लक्ष्मण उस पर विजयी हो गये और एक बाण उसकी गर्दन पर ऐसा मारा कि उसका सिर कटकर अलग जा गिरा।

मेघनाद के गिरते ही राक्षसों के हाथ-पाँव फूल गये। भगदड़ पड़ गई। रावण ने यह समाचार सुना तो उसके मुँह से ठंढी साँस निकल गई। आँखों में अँधेरा छा गया। प्रतिशोध की ज्वाला से वह पागल हो गया। राम और लक्ष्मण तो उसके वश से बाहर थे, सीताजी का वध कर डालने के लिए तैयार हो गया। तलवार लेकर दौड़ता हुआ अशोक-वाटिका में पहुँचा। सीताजी ने उसके हाथ में नंगी तलवार देखी, तो सहम उठीं किंतु रावण का मंत्री बड़ा बुद्धिमान् था। वह भी उसके पीछे-पीछे दौड़ता चला गया था। रावण को एक अबला स्त्री की जान लेने पर उद्यत देखकर बोला—महाराज, धृष्टता क्षमा हो, स्त्री पर हाथ उठाना आपकी मर्यादा के विरुद्ध है। आप वेदों के पंडित हैं। साहस और वीरता में आज संसार में आपका समान नहीं। अपने पद और ज्ञान का ध्यान कीजिये और इस कर्म से विमुख होइये। इन बातों

ने रावण का क्रोध ठंढा कर दिया। तलवार म्यान में रख ली और लौट आया।

उसी समय मेघनाद की पतिव्रता स्त्री सुलोचना ने आकर कहा—महाराज, अब मैं जीवित रहकर क्या करूँगी। मेरे पति का सिर मँगवा दीजिये, उसे लेकर मैं सती हो जाऊँगी।

रावण ने आँखों में आँसू भरकर कहा—बेटी, तेरे पति का सिर तुझे उसी समय मिलेगा, जब मैं दोनों भाइयों का सिर काट लूँगा। धैर्य रख।

सुलोचना अपने सास मंदोदरी के पास आई। दोनों सास-बहुएँ गले मिलकर खूब रोईं। तब सुलोचना बोली—माताजी, मैं अब अनाथ हो गई। मेरे पति का सिर मँगवा दीजिये, तो सती हो जाऊँ। अब जीकर क्या करूँगी। जहाँ स्वामी हैं, वहीं मैं भी जाऊँगी। यह वियोग अब मुझसे नहीं सहा जाता।

मंदोदरी ने बहू को प्यार करके कहा—बेटी, यदि तुमने यही निश्चय किया है, तो शुभ हो। मेघनाद का सिर और तो किसी प्रकार न मिलेगा, तुम जाकर स्वयं माँगो तो भले ही मिल सकता है। रामचन्द्र बड़े नेक आदमी हैं। मुझे विश्वास है कि वह तुम्हारी माँग को अस्वीकार न करेंगे।

सुलोचना उसी समय राजमहल से निकलकर रामचन्द्र की सेना में आई और रामचन्द्र के सम्मुख जाकर बोली—महाराज! एक अनाथ विधवा आपसे एक प्रार्थना करने आई है, उसे स्वीकार कीजिये। मेरे पति वीर मेघनाद का सिर मुझे दे दीजिये।

रामचन्द्र ने तुरन्त मेघनाद का सिर सुलोचना को दिलवा दिया और उसके थोड़े ही देर बाद सुलोचना सती हो गई। चिता की लपट आकाश तक पहुँची। किसी ने चाहे सुलोचना को जाते न देखा, पर वह स्वर्ग में प्रविष्ट हो गई।

रावण युद्ध-क्षेत्र में

रात भर तो रावण शोक और क्रोध से जलता रहा। सवेरा होते ही मैदान की तरफ़ चला। लंका की सारी सेना उसके साथ थी।

आज युद्ध का निर्णय हो जायगा, इसलिए दोनों ओर के लोग अपनी जानें हथेलियों पर लिये तैयार बैठे थे। रावण को मैदान में देखते ही रामचंद्र स्वयं तीर और कमान लिये निकल आये। अब तक उन्होंने केवल रावण का नाम सुना था, अब उसकी सूरत देखी तो मारे क्रोध के आँखों से ज्वाला निकलने लगी। उधर रावण को भी अपने दो बेटों के रक्त का और अपनी बहन के अपमान का बदला लेना था। घमासान लड़ाई होने लगी। रावण की बराबरी करनेवाला लंका में तो क्या, रामचंद्र की सेना में भी कोई न था। सुग्रीव, अंगद, हनुमान् इत्यादि वीर उस पर एक साथ भाले गदा और तीर चलाते थे; नील और नल उस पर पत्थर मारते थे; पर उसने इतने तेज़ी से तीर चलाये कि कोई सामने न ठहर सका। लक्ष्मण ने देखा कि रामचन्द्र उसके मुकाबिले में अकेले रहे जाते हैं तो वह भी आ खड़े हुए और तीरों की बौछार करने लगे। किन्तु रावण पहाड़ की नाईं अटल खड़ा सबके आक्रमणों का जवाब दे रहा था। आख़िर उसने अवसर पाकर एक तीर ऐसा चलाया कि लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़े; दूसरा तीर रामचंद्र पर पड़ा; वह भी गिर पड़े। रावण ने तुरन्त तलवार निकाली और चाहता था कि रामचंद्र का वध कर दे कि हनुमान् ने लपककर उसके सीने में एक गदा इतनी ज़ोर से मारी कि वह सँभल न सका। उसका गिरना था कि राम और लक्ष्मण उठ बैठे। रावण भी होश में आ गया। फिर लड़ाई होने लगी। आखिर रामचन्द्र का एक तीर रावण के सीने में घुस गया। रक्त की धारा बह निकली। उसकी आँखें बन्द हो गईं। रथवान् ने समझा, रावण का काम तमाम हो गया। रथ को भगाकर नगर की ओर चला। रास्ते में रावण को होश आ गया। रथ को नगर की ओर जाते देखकर क्रोध से आग हो गया। उसी समय रथ को मैदान की ओर ले चलने की आज्ञा दी।

संयोग से उसी समय विभीषण सामने आ गया। रावण ने उसे देखते ही भाले से वार किया। चाहता था कि उसकी धोखेबाज़ी का दण्ड दे दे। किन्तु लक्ष्मण ने एक तीर चलाकर भाले को काट डाला।

विभीषण की जान बच गई। अबकी रावण ने अग्नि-वाण छोड़ने शुरू किये। इन वाणों से आग की लपटें निकलती थीं। रामचन्द्र की सेना में खलबली पड़ गई। किन्तु रावण के सीने में जो घाव लगा था उससे वह प्रत्येक क्षण निर्बल होता जाता था, यहाँ तक कि उसके हाथ से धनुष छूटकर गिर पड़ा। उस समय रामचन्द्र ने कहा—राजा रावण, अब तो तुम्हें ज्ञात हो गया कि हम लोग उतने निर्बल नहीं हैं, जितना तुम समझते थे। तुम्हारा सारा परिवार तुम्हारी मूर्खता का शिकार हो गया। क्या अब भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलीं? अब भी यदि तुम अपनी दुष्टता छोड़ दो तो हम तुम्हें क्षमा कर देंगे।

रावण ने सँभलकर धनुष उठा लिया और बोला—क्या तुम समझते हो कि कुम्भकर्ण और मेघनाद के मारे जाने से मैं डर गया हूँ? रावण को अपने साहस और बल का भरोसा है। वह दूसरों के बल पर नहीं लड़ता। वीरों की सन्तान लड़ाई में मरने के सिवा और होती ही किस लिए है। अब सँभल जाओ, मैं फिर वार करता हूँ।

किन्तु यह केवल गीदड़-भभकी थी। रामचन्द्र ने अबकी जो तीर मारा, वह फिर रावण के सीने में लगा। एक घाव पहले लग चुका था, इस दूसरे घाव ने अन्त कर दिया। रावण रथ के नीचे गिर पड़ा और तड़प-तड़पकर जान दे दी। अत्याचारी था, अन्यायी था, नीच था, किन्तु वीर भी था। मरते समय भी धनुष उसके हाथ में था।

रावण को रथ से नीचे गिरते देख विभीषण दौड़कर उसके पास आ गया। देखा तो वह दम तोड़ रहा था। उस समय भाई के रक्त ने जोश मारा। विभीषण रावण के रक्त-लुण्ठित मृत शरीर से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगा। इतने में रावण की रानी मन्दोदरी और दूसरी रानियाँ भी आकर विलाप करने लगीं। रामचन्द्र ने उन्हें समझाकर बिदा किया। सैनिकों ने चाहा कि चलकर लंका को लूटें, किन्तु रामचन्द्र ने उन्हें मना किया। हारे हुए शत्रु के साथ वे किसी प्रकार की ज्यादती नहीं करना चाहते थे।

विभीषण का राज्याभिषेक

एक दिन वह था कि विभीषण अपमानित होकर रोता हुआ निकला था, आज वह विजयी होकर लंका में प्रविष्ट हुआ। सामने सवारों का एक समूह था। प्रकार-प्रकार के बाजे बज रहे थे। विभीषण एक सुन्दर रथ पर बैठे हुए थे, लक्ष्मण भी उनके साथ थे। पीछे सेना के नामी सूरमा अपने-अपने रथों पर शान से बैठे हुए चले जा रहे थे। आज विभीषण का नियमानुसार राज्याभिषेक होगा। वह लंका की गद्दी पर बैठेंगे। रामचन्द्र ने उनको जो वचन दिया था उसे पूरा करने के लिये लक्ष्मण उनके साथ जा रहे हैं। शहर में ढिंढोरा पिट गया है कि अब राजा विभीषण लंका के राजा हुए। दोनों ओर छतों से उन पर फूलों की वर्षा हो रही है। धनी-मानी नजरें उपस्थित करने की तैयारियाँ कर रहे हैं। सब बन्दियों की मुक्ति की घोषणा कर दी गई है। रावण का कोई शोक नहीं करता। सभी उसके अत्याचार से पीड़ित थे। विभीषण का सभी यश गा रहे हैं।

विभीषण को गद्दी पर बिठाकर रामचन्द्र ने हनुमान् को सीता के पास भेजा। विभीषण पालकी लेकर पहले ही से उपस्थित थे। सीताजी के हर्ष का कौन अनुमान कर सकता है। इतने दिनों की कैद के बाद आज उन्हें आजादी मिली है। मारे हर्ष के उन्हें मूर्च्छा आ गई। जब चेतना आई तो हनुमान् ने उनके चरणों पर सिर झुकाकर कहा—माता! श्री रामचन्द्रजी आपकी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। वह स्वयं आते, किन्तु नगर में आने से विवश हैं। सीताजी खुशी-खुशी पालकी पर बैठीं। रामचन्द्र से मिलने की खुशी में उन्हें कपड़ों की भी चिन्ता न थी। किन्तु विभीषण की रानी श्रमा ने उनके शरीर पर उबटन मला, सिर में तेल डाला, बाल गूँथे, बहुमूल्य साड़ी पहनाई और विदा किया। सवारी रवाना हुई। हजारों आदमी साथ थे।

रामचन्द्र को देखते ही सीताजी की आँखों से खुशी के आँसू बहने लगे। वह पालकी से उतरकर उनकी ओर चलीं। रामचन्द्र अपनी

जगह पर खड़े रहे। उनके चेहरे से ख़ुशी नहीं जाहिर हो रही थी, बल्कि रंज जाहिर होता था। सीता निकट आ गईं। फिर भी वह अपने जगह पर खड़े रहे। तब सीताजी उनके हृदय की बात समझ गईं। वह उनके पैरों पर नहीं गिरी, सिर झुकाकर खड़ी हो गईं। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे।

एक मिनट के बाद सीताजी ने लक्ष्मण से कहा—भैया, खड़े क्या देखते हो। मेरे लिए एक चिता तैयार कराओ। जब स्वामीजी को मुझसे घृणा है, तो मेरे लिए आग की गोद के सिवा और कोई स्थान नहीं। दर्शन हो गये, मेरे लिए यही सौभाग्य की बात है। हाय ! क्या सोच रही थी, और क्या हुआ !

यह बात न थी कि रामचन्द्र को सीताजी पर किसी प्रकार का संदेह था। वह भली प्रकार जानते थे कि सीताजी ने कभी रावण से सीधे मुँह बात भी नहीं की। सदैव उससे घृणा करती रहीं। किन्तु संसार को सीताजी की निर्मल-हृदयता पर कैसे विश्वास आता। सीताजी भी मन में यह बात भली प्रकार समझती थीं। इसीलिए उन्होंने अपने विषय में कुछ भी न कहा, जान देने के लिए तैयार हो गईं। रामचन्द्र का कलेजा फटा जाता था, किन्तु विवश थे।

तनिक देर में चिता तैयार हो गई। उसमें आग लगा दी गई, लपटें उठने लगीं। सीताजी ने रामचन्द्र को प्रणाम किया और चिता में कूदने चलीं। वहाँ सारी सेना एकत्रित थी। सीताजी को आग की ओर बढ़ते देखकर चारों ओर शोर मच गया। सब लोग चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे—हमको सीताजी पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ! वह देवी हैं, हमारी माता हैं, हम उनकी पूजा करते हैं ! हनुमान्, अंगद, सुग्रीव इत्यादि सीताजी का रास्ता रोककर खड़े हो गये। उस समय रामचन्द्र को विश्वास हुआ कि अब सीताजी की पवित्रता पर किसी को सन्देह नहीं। उन्होंने आगे बढ़कर सीताजी को छाती से लगा लिया। सारा क्षेत्र हर्षध्वनि से गूँज उठा।

अयोध्या को वापसी

रामचन्द्र ने लंका पर जिस आशय से आक्रमण किया था, वह पूरा हो गया। सीताजी छुड़ा ली गईं, रावण को दंड दिया जा चुका। अब लंका में रहने की आवश्यकता न थी। रामचन्द्र ने चलने की तैयारी करने का आदेश दिया। विभीषण ने जब सुना कि रामचन्द्र जा रहे हैं तो आकर बोला—महाराज! मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ जो आपने इतने शीघ्र चलने की ठान ली? भला दस-पाँच दिन तो मुझे सेवा करने का अवसर दीजिये। अभी तो मैं आपका कुछ आतिथ्य कर ही न सका।

रामचन्द्र ने कहा—विभीषण! मेरे लिए इससे अधिक प्रसन्नता की और कौन-सी बात हो सकती थी कि कुछ दिन तुम्हारे संसर्ग का आनन्द उठाऊँ। तुम-जैसे निर्मल हृदय पुरुष बड़े भाग्य से मिलते हैं। किन्तु बात यह है कि मैंने भरत से चौदहवें वर्ष के पूरे होते ही लौट जाने का प्रण किया था। अब चौदह वर्ष पूरे होने में दो ही चार दिन का विलम्ब है। यदि मुझे एक दिन की भी देर हो गई, तो भरत को बड़ा दुःख होगा। यदि जीवित रहा तो फिर कभी भेंट होगी। अभी तो अयोध्या तक पहुँचने में महीनों लगेंगे।

विभीषण--महाराज! अयोध्या तो आप दो दिन में पहुँच जायँगे।

रामचन्द्र—केवल दो दिन में? यह कैसे सम्भव है?

विभीषण--मेरे भाई रावण ने अपने लिए एक वायुयान बनवाया था। उसे पुष्पक-विमान कहते हैं। उसकी चाल एक हजार मील प्रति-दिन है। बड़े आराम की चीज है। दस-बारह आदमी आसानी से बैठ सकते हैं। ईश्वर ने चाहा तो आज के तीसरे दिन आप अयोध्या में होंगे। किन्तु मेरी इतनी प्रार्थना आपको स्वीकार करनी पड़ेगी। मैं भी आपके साथ चलूँगा। जहाँ आपके हजारों चाकर हैं, वहाँ मुझे भी एक चाकर समझिये।

उसी दिन पुष्पक-विमान आ गया। विचित्र और आश्चर्य-जनक चीज़ थी। कल घुमाते ही हवा में उठकर उड़ने लगती थी। बैठने की जगह अलग, सोने की जगह अलग, हीरे-जवाहरात जड़े हुए। ऐसा मालूम होता था कि कोई उड़नेवाला महल है। रामचन्द्र इसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए, किन्तु जब चलने को तैयार हुए तो हनुमान्, सुग्रीव, अंगद, नील, जामवंत, सभी नायकों ने कहा—महाराज! आपकी सेवा में इतने दिनों के रहने के बाद अब यह वियोग नहीं सहा जाता। यदि आप यहाँ नहीं रहते हैं तो हम लोगों को ही साथ लेते चलिये। वहाँ आपके राज्याभिषेक का उत्सव मनायेंगे, कौशिल्या माता के दर्शन करेंगे, गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज इत्यादि के उपदेश सुनेंगे और आपकी सेवा करेंगे।

रामचन्द्र ने पहले तो उन्हें समझाया कि आप लोगों ने मेरे ऊपर जो उपकार किये हैं, वही काफ़ी हैं, अब और अधिक उपकारों के बोझ से न दबाइये। किन्तु जब उन लोगों ने बहुत आग्रह किया तो विवश होकर उन लोगों को भी साथ ले लिया। सब के सब विमान पर बैठे और विमान हवा में उड़ चला। रामचन्द्र और सीताजी में बातें होने लगीं। दोनों ने अपने-अपने वृत्तान्त वर्णन किये। विमान हवा में उड़ता चला जाता था। जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से जा रहे थे। रास्ते में जो प्रसिद्ध स्थान आते थे, उन्हें रामचन्द्रजी सीताजी को दिखा देते थे। पहले समुद्र दिखाई दिया। उस पर बँधा हुआ पुल देखकर सीताजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर वह स्थान आया, जहाँ रामचन्द्र ने बालि को मारा था। इसके बाद किष्किन्धापुरी दिखाई दी। रामचन्द्र ने कहा—जिस राजा सुग्रीव की सहायता से हमने लंका विजय की, उनका मकान यहीं है। सीताजी ने सुग्रीव की रानी से भेंट करने की इच्छा प्रकट की इसलिए विमान रोक दिया गया, और लोग सुग्रीव के घर उतरे। तारा ने सीताजी के गले में फूलों की माला पहनाई और अपने साथ महल में ले गई। सुग्रीव ने अपने प्रतिष्ठित अतिथियों की अभ्यर्थना की और उन्हें दो-चार दिन रोकना

चाहा किन्तु रामचन्द्र कैसे रुक सकते थे। दूसरे दिन फिर विमान रवाना हुआ। सुग्रीव इत्यादि भी उस पर बैठकर चले। रामचन्द्रजी से उन लोगों को इतना प्रेम हो गया था कि उनको छोड़ते हुए इन लोगों को दुःख होता था।

रामचन्द्र ने फिर सीताजी को मुख्य-मुख्य स्थान दिखाना प्रारम्भ किया। देखो, यह वह वन है जहाँ हम तुम्हें तलाश करते फिरते थे। अहा, देखो वह छोटी-सी झोपड़ी जो दिखाई दे रही है वही शबरी का घर है। यहाँ रात भर हमने जो आराम पाया, उतना कभी अपने घर भी न पाया था। यह लो वह स्थान आ गया जहाँ पवित्र जटायु से हमारी भेंट हुई थी। वह उसकी कुटी है। केवल दीवारें शेष रह गई हैं। जटायु ने हमें तुम्हारा पता न बताया होता, तो ज्ञात नहीं कहाँ-कहाँ भटकते फिरते। वह देखो पञ्चवटी है। वह हमारी कुटी है। कितना जी चाहता है कि चलकर एक बार उस कुटी के दर्शन कर लूँ। सीताजी इस कुटी को देखकर रोने लगीं। आह! यहीं से उन्हें रावण हर ले गया था। वह दिन, वह घड़ी कितनी अशुभ थी कि इतने दिनों तक उन्हें एक अत्याचारी के कैद में रहना पड़ा। रावण का वह साधुओं का-सा वेश उनकी आँखों में फिर गया। आँसू किसी प्रकार न थमते थे। कठिनता से रामचन्द्र ने उन्हें समझाकर चुप किया। विमान और आगे बढ़ा। अगस्त्य मुनि का आश्रम दिखाई दिया। रामचन्द्र ने उनके दर्शन किये, किन्तु रुकने का अवकाश न था इसलिए थोड़ी देर के बाद फिर विमान रवाना हुआ। चित्रकूट दिखाई दिया। सीताजी अपनी कुटी देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। कुछ देर बाद प्रयाग दिखाई दिया। यहीं भारद्वाज मुनि का आश्रम था। रामचन्द्र ने विमान को उतारने का आदेश दिया और मुनिजी की सेवा में उपस्थित हुए। मुनिजी उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। बड़ी देर तक रामचन्द्र उन्हें अपने वृत्तान्त सुनाते रहे। फिर और बातें होने लगीं। रामचन्द्र ने कहा—महाराज! मुझे तो आशा न थी कि फिर आपके दर्शन होंगे। किन्तु आप के आशीर्वाद से आज फिर आपके चरण-स्पर्श का अवसर मिल गया।

भारद्वाज बोले—बेटा ! जब तुम यहाँ से जा रहे थे, उस समय मुझे जितना दुःख हुआ था, उससे कहीं अधिक प्रसन्नता आज तुम्हारी वापसी पर हो रही है।

राम—आपको अयोध्या के समाचार तो मिलते होंगे ?

भारद्वाज—हाँ बेटा, वहाँ के समाचार बराबर मिलते रहते हैं। भरत तो अयोध्या से दूर एक गाँव में कुटी बनाकर रहते हैं; किन्तु शत्रुघ्न की सहायता से उन्होंने बहुत अच्छी तरह राज्य का कार्य सँभाला है। प्रजा प्रसन्न है। अत्याचार का नाम भी नहीं है। किन्तु सब लोग तुम्हारे लिए अधीर हो रहे हैं। भरत तो इतने अधीर हैं कि यदि तुम्हें एक दिन की भी देर हो गई तो शायद तुम उन्हें जीवित न पाओ।

रामचन्द्र ने उसी समय हनुमान् को बुलाकर कहा—तुम अभी भरत के पास जाओ, और उन्हें मेरे आने की सूचना दो। वह बहुत घबरा रहे होंगे। मैं कल सवेरे यहाँ से चलूँगा। यह आज्ञा पाते ही हनुमान् अयोध्या की ओर रवाना हुए और भरत का पता पूछते हुए नन्दिग्राम पहुँचे। भरत ने ज्योंही यह शुभ समाचार सुना, उन्हें मारे हर्ष के मूर्च्छा आ गई। उसी समय एक आदमी को भेजकर शत्रुघ्न को बुलवाया और कहा—भाई, आज का दिन बड़ा शुभ है कि हमारे भाई साहब चौदह वर्ष के देश-निकाले के बाद अयोध्या आ रहे हैं। नगर में ढिंढोरा पिटवा दो कि लोग अपने-अपने घर दीप जलायें और इस प्रसन्नता में उत्सव मनायें। सवेरे तुम उनके उत्सव का प्रबन्ध करके यहाँ आना। हम सब लोग भाई साहब की अगवानी करने चलेंगे।

दूसरे दिन सवेरे रामचन्द्रजी भारद्वाज मुनि के आश्रम से रवाना हुए। जिस अयोध्या की गोद में पले और खेले, उस अयोध्या के आज फिर दर्शन हुए। जब अयोध्या के बड़े-बड़े ऐश्वर्यशाली प्रासाद दिखाई देने लगे, तो रामचन्द्र का मुख मारे प्रसन्नता के चमक उठा। उसके साथ ही आँखों से आँसू भी बहने लगे। हनुमान् से बोले—मित्र, मुझे संसार में कोई स्थान अपनी अयोध्या से अधिक प्रिय नहीं। मुझे

यहाँ के काँटे भी दूसरी जगह के फूलों से अधिक सुन्दर मालूम होते हैं। वह देखो सरयू नदी नगर को अपने गोद में लिये कैसा बच्चों की तरह खिला रही है। यदि मुझे भिक्षुक बनकर भी यहाँ रहना पड़े तो दूसरी जगह राज्य करने से अधिक प्रसन्न रहूँगा। अभी वह यही बातें कर रहे थे कि नीचे हाथी, घोड़ों, रथों का जुलूस दिखाई दिया। सबके आगे भरत गेरुवे रंग की चादर ओढ़े, जटा बढ़ाये, नंगे पाँव एक हाथ में रामचन्द्र की खड़ाऊँ लिये चले आ रहे थे। उनके पीछे शत्रुघ्न थे। पालकियों में कौशिल्या, सुमित्रा और कैकेयी थीं। जुलूस के पीछे अयोध्या के लाखों आदमी अच्छे-अच्छे कपड़े पहने चले आ रहे थे। जलूस को देखते ही रामचन्द्र ने विमान को नीचे उतारा। नीचे के आदमियों को ऐसा मालूम हुआ की कोई बड़ा पक्षी पर जोड़े उतर रहा है। कभी ऐसा विमान उनकी दृष्टि के सामने न आया था। किंतु जब विमान नीचे उतर आया, तो लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि उस पर रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण और उनके नायक बैठे हुए हैं। जय-जय की हर्ष-ध्वनि से आकाश हिल उठा।

ज्योंही रामचन्द्र विमान से उतरे, भरत दौड़कर उनके चरणों से लिपट गये। उनके मुँह से शब्द न निकलता था। बस, आँखों से आँसू बह रहे थे। रामचन्द्र उन्हें उठाकर छाती से लगाना चाहते थे किंतु भरत उनके पैरों को न छोड़ते थे। कितना पवित्र दृश्य था! रामचन्द्र ने तो पिता की आज्ञा को मानकर वनवास लिया था, किंतु भरत ने राज्य मिलने पर भी स्वीकार न किया, इसलिए कि वह समझते थे कि रामचन्द्र के रहते राज्य पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने राज्य ही नहीं छोड़ा, साधुओं का-सा जीवन व्यतीत किया, क्योंकि कैकेयी ने उन्हीं के लिए रामचन्द्र को वनवास दिया था। वह साधुओं की तरह रहकर अपनी माता के अन्याय का बदला चुकाना चाहते थे। रामचन्द्र ने बड़ी कठिनाई से उन्हें उठाया और छाती से लगा लिया। फिर लक्ष्मण भी भरत से गले मिले। उधर सीताजी ने जाकर कौशिल्या और दूसरी माताओं के

चरणों पर सिर झुकाया। कैकेयी रानी भी वहाँ उपस्थित थीं। तीनों सासों ने सीता को आशीर्वाद दिया। कैकेयी तब अपने किये पर लज्जित थी। अब उनका हृदय रामचन्द्र और कौशिल्या की ओर से साफ़ हो गया था।

रामचन्द्र की राजगद्दी

आज रामचन्द्र के राज्याभिषेक का शुभ दिन है। सरयू के किनारे मैदान में एक विशाल तम्बू खड़ा है। उसकी चोबें चाँदी की हैं और रस्सियाँ रेशम की। बहुमूल्य ग़लीचे बिछे हुए हैं। तम्बू के बाहर सुन्दर गमले रखे हुए हैं। तम्बू की छत शीशे के बहुमूल्य सामानों से सजी हुई है। दूर-दूर से ऋषि-मुनि बुलाये गये हैं। दरबार के धनी-मानी और प्रतिष्ठित राजे आदर से बैठे हैं। सामने एक सोने का जड़ाऊ सिंहासन रखा हुआ है।

एकाएक तोपें दगीं, सब लोग सँभल गये। विदित हो गया कि श्री रामचन्द्र राम-भवन से रवाना हो गये। उनके सामने घण्टा और शंख बजाया जा रहा था। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान्, सुग्रीव इत्यादि पीछे-पीछे चले आ रहे थे। रामचन्द्र ने आज राजसी पोशाक पहनी है और सीताजी के बनाव-सिंगार की तो प्रशंसा ही नहीं हो सकती।

ज्योंही यह लोग तम्बू में पहुँचे, गुरु वशिष्ठ ने उन्हें हवन-कुण्ड के सामने बैठाया। ब्राह्मणों ने वेद-मन्त्र पढ़ना आरम्भ कर दिया। हवन होने लगा। उधर राज-महल में मंगल के गीत गाये जाने लगे। हवन समाप्त होने पर गुरु वशिष्ठ ने रामचन्द्र के माथे पर केशर का तिलक लगा दिया। उसी समय तोपों ने सलामियाँ दागीं, धनिकों ने नज़रें उपस्थित कीं; कवीश्वरों ने कवित्त पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। रामचन्द्रजी और सीताजी सिंहासन पर शोभायमान हो गये। विभीषण मोरछल झलने लगा। सुग्रीव ने चोबदारों का काम सँभाल लिया और हनुमान पंखा झलने लगे। निष्ठावान् हनुमान की प्रसन्नता की थाह न

थी। जिस राजकुमार को बहुत दिन पहले उसने ऋष्यमूक पर्वत पर इधर-उधर सीता को तलाश करते पाया था, आज उसी को सीताजी के साथ सिंहासन पर बैठे देख रहा था। इन्हें इस उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचाने में उसने कितना भाग लिया था, अभिमान-पूर्ण गौरव से वह फूला न समाता था।

भरत बड़े-बड़े थालों में मेवे, अनाज भरे बैठे हुए थे। रुपयों का ढेर उनके सामने लगा था। ज्योंही रामचन्द्र और सीता सिंहासन पर बैठे, भरत ने दान देना प्रारम्भ कर दिया। उन चौदह वर्षों में उन्होंने बचत करके राजकोष में जो कुछ एकत्रित किया था, वह सब किसी-न-किसी रूप में फिर प्रजा के पास पहुँच गया। निर्धनों को भी अशर्फ़ियों की सूरत दिखाई दे गई। नंगों को शाल-दुशाले प्राप्त हो गये और भूखों को मेवे और मिठाई से सन्तुष्टि हो गई। चारों तरफ़ भरत की दानशीलता की धूम मच गई। सारे राज्य में कोई निर्धन न रह गया। किसानों के साथ विशेष छूट की गई। एक साल का लगान माफ़ कर दिया गया। जगह-जगह कुएँ खोदवा दिये गये। बन्दियों को मुक्त कर दिया गया। केवल वही मुक्त न किये गये, जो छल और कपट के अभियुक्त थे। धनिकों और प्रतिष्ठितों को पदवियाँ दी गईं और थैलियाँ बाँटी गईं।

उत्तर-कांड

राम का राज्य

राज्याभिषेक का उत्सव समाप्त होने के उपरान्त सुग्रीव, विभीषण, अंगद इत्यादि तो बिदा हुए, किन्तु हनुमान को रामचन्द्र से इतना प्रेम हो गया था कि वह उन्हें छोड़कर जाने पर सहमत न हुए। लक्ष्मण, भरत इत्यादि ने उन्हें बहुत समझाया, किन्तु वह अयोध्या से न गये। उनका सारा जीवन रामचन्द्र के साथ ही समाप्त हुआ। वह सदैव रामचन्द्र की सेवा करने को तैयार रहते थे। बड़े से बड़ा कठिन काम देखकर भी उनका साहस मन्द न होता था।

रामचन्द्र के समय में अयोध्या के राज्य की इतनी उन्नति हुई, प्रजा इतनी प्रसन्न थी कि 'राम-राज्य' एक कहावत हो गई है। जब किसी समय की बहुत प्रशंसा करनी होती है, तो उसे 'राम-राज्य' कहते हैं। उस समय में छोटे-बड़े सब प्रसन्न थे, इसलिए कोई चोरी न करता था। शिक्षा अनिवार्य थी, बड़े-बड़े ऋषि लड़कों को पढ़ाते थे, इसलिए अनुचित कर्म न होते थे। विद्वान् लोग न्याय करते थे, इसलिए झूठी गवाहियाँ न बनाई जाती थीं। किसानों पर सख़्ती न की जाती थी, इसलिए वह मन लगाकर खेती करते थे। अनाज बहुतायत से पैदा होता था। हर एक गाँव में कुएँ और तालाब खोदवा दिये गये थे, नहरें बनवा दी गई थीं इसलिए किसान लोग आकाश-वर्षा पर ही निर्भर न रहते थे। सफ़ाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। खाने-पीने की चीज़ों की कमी न थी। दूध, घी विपुलता से पैदा होता था क्योंकि हर एक गाँव में साफ़ चरागाहें थीं, इसलिए देश में बीमारियाँ न थीं। प्लेग, हैजा, चेचक इत्यादि बीमारियों के नाम भी कोई न जानता था। स्वस्थ रहने के कारण सभी सुन्दर थे। कुरूप आदमी कठिनाई से मिलता था क्योंकि स्वास्थ्य ही सुन्दरता का भेद है। युवा मृत्युएँ बहुत कम होती थीं इसलिए लोग अपनी पूरी आयु जीते थे। गली-गली अनाथालय न थे इसलिए कि देश में अनाथ और विधवायें थीं ही नहीं।

उस समय में आदमी की प्रतिष्ठा उसके धन या प्रसिद्धि के अनुसार न की जाती थी, बल्कि धर्म और ज्ञान के अनुसार। धनिक लोग निर्धनों का रक्त चूसने की चिन्ता में न रहते थे, न निर्धन लोग धनिकों को धोखा देते थे। धर्म और कर्तव्य की तुलना में स्वार्थ और प्रयोजन को लोग तुच्छ समझते थे। रामचन्द्र प्रजा को अपने लड़के की तरह मानते थे। प्रजा भी उन्हें अपना पिता समझती थी। घर-घर यज्ञ और हवन होता था।

रामचन्द्र केवल अपने परामर्श-दाताओं ही की बातें न सुनते थे। वह स्वयं भी प्रायः वेश बदलकर अयोध्या और राज्य के दूसरे नगरों में घूमते रहते थे। वह चाहते थे कि प्रजा का ठीक-ठीक समाचार उन्हें मिलता रहे। ज्योंही वह किसी सरकारी पदाधिकारी की बुराई सुनते, तुरन्त उससे उत्तर माँगते और कड़ा दण्ड देते। सम्भव न था कि प्रजा पर कोई अत्याचार करे और रामचन्द्र को उसकी सूचना न मिले। जिस ब्राह्मण को धन की ओर झुकते देखते, तुरंत उसका नाम वैश्यों में लिखा देते। उनके राज्य में यह संभव न था कि कोई तो धन और प्रतिष्ठा दोनों ही लूटे, और कोई दोनों में से एक भी न पाये।

कई साल इसी तरह बीत गये। एक दिन रामचन्द्र रात को अयोध्या की गलियों में भेष बदले घूम रहे थे कि एक धोबी के घर में झगड़े की आवाज़ सुनकर वे रुक गये और कान लगाकर सुनने लगे। ज्ञात हुआ कि धोबिन आधी रात को बाहर से लौटी है और उसका पति उससे पूछ रहा है कि तू इतनी रात तक कहाँ रही। स्त्री कह रही थी, यहीं पड़ोस में तो काम से गई थी। क्या कैदी बनकर तेरे घर में रहूँ? इस पर पति ने कहा—मेरे पास रहेगी तो तुझे कैदी बनकर ही रहना पड़ेगा, नहीं कोई दूसरा घर ढूँढ़ ले। मैं राजा नहीं हूँ कि तू चाहे जो अवगुण करे उस पर पर्दा पड़ जाय। यहाँ तो तनिक भी ऐसी-वैसी बात हुई तो बिरादरी से निकाल दिया जाऊँगा। हुक्का-पानी बन्द हो जायगा। बिरादरी को भोज देना पड़ जायगा। इतना किसके घर से लाऊँगा। तुझे अगर सैर-सपाटा करना है, तो मेरे घर से चली जा।

इतना सुनना था कि रामचन्द्र के होश उड़ गये। ऐसा मालूम हुआ कि जमीन नीचे धँसी जा रही है। ऐसे-ऐसे छोटे आदमी भी मेरी बुराई कर रहे हैं! मैं अपनी प्रजा की दृष्टि में इतना गिर गया हूँ! जब एक धोबी के दिल में ऐसे विचार पैदा हो रहे हैं तो भले आदमी शायद मेरा छुआ पानी भी न पियें। उसी समय रामचन्द्र घर की ओर चले और सारी रात इसी बात पर विचार करते रहे। कुछ बुद्धि काम न करती थी क्या करना चाहिये। इसके सिवा कोई युक्ति न थी कि सीताजी को अपने पास से अलग कर दें। किंतु इस पवित्रता की देवी के साथ इतनी निर्दयता करते हुए उन्हें आत्मिक दुःख हो रहा था।

सवेरे रामचन्द्र ने तीनों भाइयों को बुलाया और रात की घटना की चर्चा करके उनको सलाह पूछी। लक्ष्मण ने कहा—उस नीच धोबी को फाँसी दे देनी चाहिये, जिसमें कि फिर किसी को ऐसी बुराई करने का साहस न हो।

शत्रुघ्न ने कहा—उसे राज्य से निकाल दिया जाय। उसकी बदजबानी की यही सजा है।

भरत बोले—बकने दीजिये। इन नीच आदमियों के बकने से होता ही क्या है। सीता से अधिक पवित्र देवी संसार में तो क्या, देव-लोक में भी न होगी।

लक्ष्मण ने जोश से कहा—आप क्या कहते हैं, भाई साहब! इन टके के आदमियों का इतना साहस कि सीताजी के विषय में ऐसा असन्तोष प्रकट करें? ऐसे आदमी को अवश्य फाँसी देनी चाहिये। सीताजी ने अपनी पवित्रता का प्रमाण उसी समय दे दिया जब वह चिता में कूदने को तैयार हो गईं।

रामचन्द्र ने देर तक विचार में डूबे रहने के बाद सिर उठाया और बोले—आप लोगों ने सोचकर परामर्श नहीं दिया। क्रोध में आ गये। धोबी को मार डालने से हमारी यह बदनामी दूर न होगी, बल्कि और भी फैलेगी। बदनामी को दूर करने का केवल एक इलाज है, और

वह यह है कि सीताजी का परित्याग कर दिया जाय। मैं जानता हूँ कि सीता लज्जा और पवित्रता की देवी हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि उन्होंने स्वप्न में भी मेरे अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं किया, किन्तु मेरा विश्वास जब प्रजा के दिलों में विश्वास नहीं पैदा कर सकता, तो उससे लाभ ही क्या। मैं अपने वंश में कलंक लगते नहीं देख सकता। मेरा धर्म है कि प्रजा के सामने जीवन का ऐसा उदाहरण उपस्थित करूँ जो समाज को और भी ऊँचा और पवित्र बनाये। यदि मैं ही लोक-निन्दा और बदनामी से न डरूँगा तो प्रजा इसकी कब परवाह करेगी और इस प्रकार जन-साधारण को सीधे और सच्चे मार्ग से हट जाना सरल हो जायगा। बदनामी से बढ़कर हमारे जीवन को सुधारने की कोई दूसरी ताकत नहीं है। मैंने जो युक्ति बतलाई, उसके सिवाय और कोई दूसरी युक्ति नहीं है।

तीनों भाई रामचन्द्र का यह वार्तालाप सुनकर गुम-सुम हो गये। कुछ जवाब न दे सके। हाँ, दिल में उनके बलिदान की प्रशंसा करने लगे। वह जानते हैं कि सीताजी निरपराध हैं, फिर भी समाज की भलाई के विचार से अपने हृदय पर इतना अत्याचार कर रहे हैं। कर्तव्य के सामने, प्रजा की भलाई के सामने इन्हें उसकी भी परवाह नहीं है, जो इन्हें दुनिया में सबसे प्रिय है। शायद यह अपनी बुराई सुनकर यह इतनी ही तत्परता से अपनी जान दे देते।

रामचन्द्र ने एक क्षण के बाद फिर कहा—हाँ, इसके सिवा अब कोई दूसरी युक्ति नहीं है। आज मुझे एक धोबी से लज्जित होना पड़ रहा है। मैं इसे सहन नहीं कर सकता। भैया लक्ष्मण, तुमने बड़े कठिन अवसरों पर मेरी सहायता की है। यह काम भी तुम्हीं को करना होगा। मुझमें सीता से बात करने का साहस नहीं है। मैं उनके सामने जाने का साहस नहीं कर सकता। उनके सामने जाकर मैं अपने राष्ट्रीय कर्तव्य से हट जाऊँगा, इसलिए तुम आज ही सीताजी को किसी बहाने से लेकर चले जाओ। मैं जानता हूँ कि यह निर्दयता करते हुए तुम्हारा हृदय तुम को कोसेगा; किन्तु याद रखो, कर्तव्य का मार्ग

कठिन है। जो आदमी तलवार की धार पर चल सके, वही कर्तव्य के रास्ते पर चल सकता है।

यह आज्ञा देकर रामचन्द्रजी दरबार में चले गये। लक्ष्मण जानते थे कि यदि आज रामचन्द्र की आज्ञा का पालन न किया गया तो वह अवश्य आत्म-हत्या कर लेंगे। वह अपनी बदनामी कदापि नहीं सह सकते। सीताजी के साथ छल करते हुए उनका हृदय उनको धिक्कार रहा था, किन्तु विवश थे। जाकर सीताजी से बोले—भाभी! आप जंगलों की सैर का कई बार तकाजा कर चुकी हैं, मैं आज सैर करने जा रहा हूँ। चलिये, आपको भी लेता चलूँ।

बेचारी सीता क्या जानती थी कि आज यह घर मुझसे सदैव के लिए छूट रहा है। मेरे स्वामी मुझे सदैव के लिए वनवास दे रहे हैं। बड़ी प्रसन्नता से चलने को तैयार हो गईं। उसी समय रथ तैयार हुआ, लक्ष्मण और सीता उस पर बैठकर चले। सीताजी बहुत प्रसन्न थीं। हरएक नई चीज को देखकर प्रश्न करने लगती थीं, यह क्या है, वह क्या चीज है? किन्तु लक्ष्मण इतने शोकग्रस्त थे कि हूँ-हाँ करके टाल देते थे। उनके मुँह से शब्द न निकलता था। बातें करते तो तुरन्त पर्दा खुल जाता, क्योंकि उनकी आँखों में बार-बार आँसू भर आते थे। आखिर रथ गंगा के किनारे जा पहुँचा।

सीताजी बोलीं—तो क्या हम लोग आज जंगलों ही में रहेंगे? शाम होने को आई, अभी तो किसी ऋषि-मुनि के आश्रम में भी नहीं गई। लौटेंगे कब तक?

लक्ष्मण ने मुँह फेरे हुए उत्तर दिया—देखिये, कब तक लौटते हैं।

माँझी को ज्योंही रानी सीता के आने की सूचना मिली, वह राज्य की नाव खेता हुआ आया। सीता रथ से उतरकर नाव में जा बैठीं, और पानी से खेलने लगीं। जंगल की ताजी हवा ने उन्हें प्रफुल्लित कर दिया था।

सीता-वनवास

नदी के पार पहुँचकर सीताजी की दृष्टि एकाएक लक्ष्मण के चेहरे

पर पड़ी तो देखा कि उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। वीर लक्ष्मण ने अब तक तो अपने को रोका था, पर अब आँसू न रुक सके। मैदान में तीरों को रोकना सरल है, आँसू को कौन वीर रोक सकता है!

सीताजी आश्चर्य से बोलीं—लक्ष्मण, तुम रो क्यों रहे हो? क्या आज वन को देखकर फिर वनवास के दिन याद आ रहे हैं?

लक्ष्मण और भी फूट-फूटकर रोते हुए सीताजी के पैरों पर गिर पड़े और बोले—नहीं देवी! इसलिए कि आज मुझसे अधिक भाग्यहीन, निर्दय पुरुष संसार में नहीं। क्या ही अच्छा होता, मुझे मौत आ जाती। मेघनाद की शक्ति ही ने काम तमाम कर दिया होता तो आज यह दिन न देखना पड़ता। जिस देवी के दर्शनों से जीवन पवित्र हो जाता है, उसे आज मैं वनवास देने आया हूँ। हाय! सदैव के लिए!

सीताजी अब भी कुछ साफ़-साफ़ न समझ सकीं। घबराकर बोलीं—भैया, तुम क्या कह रहे हो, मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारी तबियत तो अच्छी है? आज तुम रास्ते भर उदास रहे। ज्वर तो नहीं हो आया है?

लक्ष्मण ने सीताजी के पैरों पर सिर रगड़ते हुए कहा—माता! मेरा अपराध क्षमा करो। मैं बिल्कुल निरपराध हूँ। भाई साहब ने जो आज्ञा दी है, उसका पालन कर रहा हूँ। शायद इसी दिन के लिए मैं अब तक जीवित था। मुझसे ईश्वर को यही वधिक का काम लेना था। हाय!

सीताजी अब पूरी परिस्थिति समझ गईं। अभिमान से गर्दन उठाकर बोलीं—तो क्या स्वामीजी ने मुझे वनवास दे दिया है? मेरा कोई अपराध, कोई दोष? अभी रात को नगर में भ्रमण करने के पहले वह मेरे ही पास थे। उनके चेहरे पर क्रोध का निशान तक न था। फिर क्या बात हो गई, साफ़-साफ़ कहो, मैं सुनना चाहती हूँ। और अगर सुननेवाला हो तो उसका उत्तर भी देना चाहती हूँ।

लक्ष्मण ने अभियुक्तों की तरह सिर झुकाकर कहा—माता? क्या बतलाऊँ, ऐसी बात है जो मेरे मुँह से निकल नहीं सकती। अयोध्या में

आपके बारे में लोग भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें कह रहे हैं। भाई साहब को आप जानती हैं, बदनामी से कितना डरते हैं। और मैं आप से क्या कहूँ।

सीताजी की आँखों में न आँसू थे, न घबराहट, वह चुपचाप टकटकी लगाये गंगा की ओर देख रही थीं फिर बोलीं—क्या स्वामी को भी मुझ पर संदेह है?

लक्ष्मण ने जबान को दाँतों से दबाकर कहा—नहीं भाभीजी, कदापि नहीं। उन्हें आपके ऊपर कण बराबर भी सन्देह नहीं है। उन्हें आपकी पवित्रता का उतना ही विश्वास है, जितना अपने अस्तित्व का। यह विश्वास किसी प्रकार नहीं मिट सकता, चाहे सारी दुनिया आप पर उँगली उठाये। किंतु जन-साधारण की जबान को वह कैसे रोक सकते हैं। उनके दिल में आपका जितना प्रेम है, वह मैं देख चुका हूँ। जिस समय उन्होंने मुझे यह आज्ञा दी है, उनका चेहरा पीला पड़ गया था, आँखों से आँसू बह रहे थे; ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई उनके सीने के अन्दर बैठा हुआ छुरियाँ मार रहा है। बदनामी के सिवा उन्हें और कोई विचार नहीं है, न हो सकता है।

सीताजी की आँखों से आँसू की दो बड़ी-बड़ी बूँदें टप-टप गिर पड़ीं। किंतु उन्होंने अपने को सँभाला और बोलीं—प्यारे लक्ष्मण, अगर यह स्वामी का आदेश है तो मैं उसके सामने सिर झुकाती हूँ। मैं उन्हें कुछ नहीं कहती। मेरे लिए यही विचार पर्याप्त है कि उनका हृदय मेरी ओर से साफ है। मैं और किसी बात की चिंता नहीं करती। तुम न रोओ भैया, तुम्हारा कोई दोष नहीं, तुम क्या कर सकते हो। मैं मरकर भी तुम्हारे उपकारों को नहीं भूल सकती। यह सब बुरे कर्मों का फल है, नहीं तो जिस आदमी ने कभी किसी जानवर के साथ भी अन्याय नहीं किया, जो शील और दया का देवता है, जिसकी एक-एक बात मेरे हृदय में प्रेम की लहरें पैदा कर देती थीं, उसके हाथों मेरी यह दुर्गति होती? जिसके लिए मैंने चौदह साल रो-रोकर काटे, वह आज मुझे त्याग देता? यह सब मेरे खोटे कर्मों का भोग है।

तुम्हारा कोई दोष नहीं। किन्तु तुम्हीं दिल में सोचो, क्या मेरे साथ यह न्याय हुआ है ? क्या बदनामी से बचने के लिए किसी निर्दोष की हत्या कर देना न्याय है ? अब और कुछ न कहूँगी। भैया, इस शोक और क्रोध की दशा में संभव है मुँह से कोई ऐसा शब्द निकल जाय, जो न निकलना चाहिये। ओह ! कैसे सहन करूँ। ऐसा जी चाहता है कि इसी समय जाकर गंगा में डूब मरूँ। हाय ! कैसे दिल को समझाऊँ ? किस आशा पर जीवित रहूँ; किस लिए जीवित रहूँ ? यह पहाड़-सा जीवन क्या रो-रोकर ही काटूँ ? स्त्री क्या प्रेम के बिना जीवित रह सकती है ? कदापि नहीं। सीता आज से मर गई।

गंगा के किनारे के लम्बे-लम्बे वृक्ष सिर धुन रहे थे। गंगा की लहरें मानो रो रही थीं। अँधेरा भयानक आकृति धारण किये दौड़ा चला आता था। लक्ष्मण पत्थर की मूर्ति बने निश्चल खड़े थे मानों शरीर में प्राण ही नहीं। सीता दो-तीन मिनट तक किसी विचार में डूबी रहीं, फिर बोलीं—नहीं वीर लक्ष्मण, अभी जान न दूँगी। मुझे अभी एक बहुत बड़ा कर्तव्य पूरा करना है। मैं अपने बच्चे के लिए जिऊँगी। वह तुम्हारे भाई की थाती है। उसे उनको सौंपकर ही मेरा कर्तव्य पूरा होगा। अब वही मेरे जीवन का आधार होगा। स्वामी नहीं हैं, तो उनकी स्मृति ही से हृदय को आश्वासन दूँगी। मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है। अपने भाई साहब से कह देना, मेरे हृदय में उनकी ओर से कोई दुर्भावना नहीं है। जब तक जिऊँगी, उनके प्रेम को याद करती रहूँगी। भैया ! हृदय बहुत दुर्बल हो रहा है। कितना ही रोकती हूँ, पर रहा नहीं जाता। मेरी समझ में नहीं आता कि जब इस तपोवन के ऋषि-मुनि मुझसे पूछेंगे, तेरे स्वामी ने तुझे क्यों वनवास दिया है, तो क्या कहूँगी ? कम से कम तुम्हारे भाई साहब को इतना तो बतला ही देना चाहिये था। ईश्वर की भी कैसी विचित्र लीला है कि वह कुछ आदमियों को केवल रोने के लिए पैदा करता है। एक बार के आँसू अभी सूखने भी न पाये थे कि रोने का यह नया सामान पैदा हो गया। हाय ! इन्हीं जंगलों में जीवन के कितने दिन आराम से

व्यतीत हुए हैं। किंतु अब रोना है और सदैव के लिए रोना है। भैया, तुम अब जाओ। मेरा विलाप कब तक सुनते रहोगे। यह तो जीवन भर समाप्त न होगा। माताओं से मेरा नमस्कार कह देना। मुझसे जो कुछ अशिष्टता हुई हो उसे क्षमा करें। हाँ, मेरे पाले हुए हिरन के बच्चों की खोज-खबर लेते रहना। पिंजरे में मेरा हीरामन तोता पड़ा हुआ है। उसके दाने-पानी का ध्यान रखना। और क्या कहूँ। ईश्वर तुम्हें सदैव कुशल से रखे। मेरे रोने-धोने की चर्चा अपने भाई साहब से न करना। नहीं शायद उन्हें दुःख हो। तुम जाओ। अँधेरा हुआ जाता है। अभी तुम्हें बहुत दूर जाना है।

लक्ष्मण यहाँ से चले, तो उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हृदय के अंदर आग-सी जल रही है। यही जी चाहता था कि सीताजी के साथ रहकर सारा जीवन उनकी सेवा करता रहूँ। पग-पग मुड़-मुड़कर सीताजी को देख लेते थे। वह अब तक वहीं सिर झुकाये बैठी हुई थीं। जब अँधेरे ने उन्हें अपने पर्दे में छिपा लिया तो लक्ष्मण भूमि पर बैठ गये और बड़ी देर तक फूट-फूटकर रोते रहे। एकाएक निराशा में एक आशा की किरण दिखाई दी। शायद रामचंद्र ने इस प्रश्न पर फिर विचार किया हो और वह सीताजी को वापस लेने को तैयार हों। शायद वह फिर उन्हें कल ही यह आज्ञा दें कि जाकर सीता को लिवा लाओ। इस आशा ने खिन्न और निराश लक्ष्मण को बड़ी सान्त्वना दी। वह वेग से पग उठाते हुए नौका की ओर चले।

लव और कुश

जहाँ सीताजी निराशा और शोक में डूबी हुई बैठी रो रही थीं, उसके थोड़े ही दूर पर ऋषि वाल्मीकि का आश्रम था। उस समय ऋषि संध्या करने के लिए गंगा की ओर जाया करते थे। आज भी वह जब नियमानुसार चले तो मार्ग में किसी स्त्री के सिसकने की आवाज़ कान में आई। आश्चर्य हुआ कि इस समय कौन स्त्री रो रही है। समझे, शायद कोई लकड़ी बटोरनेवाली औरत रास्ता भूल गई हो। सिसकियों

की आहट लेते हुए निकट आये तो देखा कि एक स्त्री बहुमूल्य कपड़े और आभूषण पहने अकेली बैठी रो रही है। पूछा—बेटी, तू कौन है और यहाँ बैठी क्यों रो रही है ?

सीता ऋषि वाल्मीकि को पहचानती थीं। उन्हें देखते ही उठकर उनके चरणों से लिपट गईं और बोलीं—भगवन्! मैं अयोध्या की अभागिनी रानी सीता हूँ। स्वामी ने बदनामी के डर से मुझे त्याग दिया है। लक्ष्मण मुझे यहाँ छोड़ गये हैं।

वाल्मीकि ने प्रेम से सीता को अपने पैरों से उठा लिया और बोले—बेटी, अपने को अभागिनी न कहो। तुम उस राजा की बेटी हो, जिसके उपदेश से हमने ज्ञान सीखा है। तुम्हारे पिता मेरे मित्र थे। जब तक मैं जीता हूँ, यहाँ तुम्हें किसी बात का कष्ट न होगा। चलकर मेरे आश्रम में रहो। रामचन्द्र ने तुम्हारी पवित्रता पर विश्वास रखते हुए भी केवल बदनामी के भय से तुम्हें त्याग दिया, यह उनका अन्याय है। सरासर अन्याय है। लेकिन इसका शोक न करो। सबसे सुखी वही आदमी है, जो सदैव और प्रत्येक दशा में अपने कर्तव्य को पूरा करता रहे। यह बड़े सौन्दर्य की जगह है। यहाँ तुम्हारी तबियत खुश होगी। ऋषियों की लड़कियों के साथ रहकर तुम अपने सब दुःख भूल जाओगी। राजमहल में तुम्हें वही चीजें मिल सकती थीं, जिनसे शरीर को आराम पहुँचता है; यहाँ तुम्हें वह चीजें मिलेंगी, जिनसे आत्मा को शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है। उठो, मेरे साथ चलो। क्या ही अच्छा होता, यदि मुझे पहले मालूम हो जाता तो तुम्हें इतना कष्ट न होता।

सीताजी को ऋषि वाल्मीकि की इन बातों से बड़ा संतोष हुआ। उठकर उनके साथ उनकी कुटिया में आईं। वहाँ और भी कई ऋषियों की कुटियाँ थीं। सीता उनकी स्त्रियों और लड़कियों के साथ रहने लगीं। इस प्रकार कई महीने के बाद उनके दो बच्चे पैदा हुए। ऋषि वाल्मीकि ने बड़े का नाम लव और छोटे का नाम कुश रखा। दोनों ही बच्चे रामचन्द्र से बहुत मिलते थे। ज़हीन और तेज़ इतने थे कि जो

बात एक बार सुन लेते, सदैव के लिए हृदय पर अंकित हो जाती। वह अपनी भोली-भाली, तोतली बातों से सीता को हर्षित किया करते थे। ऋषि वाल्मीकि दोनों बच्चों को बहुत प्यार करते थे। इन दोनों बच्चों के पालने-पोसने में सीता अपना शोक भूल गईं।

जब दोनों बच्चे ज़रा बड़े हुए तो ऋषि वाल्मीकि ने उन्हें पढ़ाना प्रारम्भ किया। अपने साथ वन में ले जाते और नाना प्रकार के फल-फूल दिखाते। बचपन ही से सच से प्रेम और झूठ से घृणा करना सिखाया। युद्ध की कला भी ख़ूब मन लगाकर सिखाई। दोनों इतने वीर थे कि बड़े-बड़े भयानक जानवरों को भी मार गिराते थे। उनका गला बहुत अच्छा था। उनका गाना सुनकर ऋषि लोग भी मस्त हो जाते थे। वाल्मीकि ने रामचन्द्र के जीवन का वृत्तान्त पद्य में लिखकर दोनों राजकुमारों को याद करा दिया था। जब दोनो इस कविता को गा-गाकर सुनाते, तो सीताजी अभिमान और गौरव की लहरों में बहने लगती थीं।

अश्वमेध-यज्ञ

सीता को त्याग देने के बाद रामचन्द्र बहुत दुःखित और शोकाकुल रहने लगे। सीता की याद हमेशा उन्हें सताती रहती थी। सोचते, बेचारी न जाने कहाँ होगी, न जाने उस पर क्या बीत रही होगी। उस समय को याद करके जो उन्होंने सीताजी के साथ व्यतीत किया था, वह प्रायः रोने लगते थे। घर की हर एक चीज़ उन्हें सीता की याद दिला देती थी। उनके कमरे की तस्वीरें सीताजी ही की बनाई हुई थीं। बाग़ के कितने ही पौधे सीताजी के हाथों के लगाये हुए थे। कभी सीता के स्वयंवर के समय की याद करते, कभी सीता के साथ जंगलों के जीवन का विचार करते। उन बातों को याद करके वह तड़पने लगते थे। आनन्दोत्सवों में सम्मिलित होना उन्होंने बिल्कुल छोड़ दिया। बिल्कुल तपस्वियों की तरह जीवन व्यतीत करने लगे। दरबार के सभासदों और मन्त्रियों ने समझाया कि आप दूसरा विवाह कर

लें, किसी प्रकार नाम तो चले। कब तक इस प्रकार तपस्या कीजियेगा। किन्तु रामचन्द्र विवाह करने पर सहमत न हुए। यहाँ तक कि कई साल बीत गये।

उस समय में कई प्रकार के यज्ञ होते थे। उसी में एक अश्वमेध यज्ञ भी था। अश्व घोड़े को कहते हैं। जो राजा यह आकांक्षा रखता था कि वह सारे देश का महाराजा हो जाय और सभी राजे उसके आज्ञा-पालक बन जायँ, वह एक घोड़े को छोड़ देता था। घोड़ा चारों ओर घूमता था। यदि कोई राजा उस घोड़े को पकड़ लेता था, तो इसके अर्थ यह होते थे कि उसे सेवक बनना स्वीकार नहीं। तब युद्ध से इसका निर्णय होता था। राजा रामचन्द्र का बल और साम्राज्य इतना बढ़ गया कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। दूर-दूर के राजाओं, महर्षियों, विद्वानों के पास नैवेद्य भेजे गये। सुग्रीव, विभीषण, अंगद सब उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आ पहुँचे। ऋषि वाल्मीकि को भी नैवेद्य मिला। वह लव और कुश के साथ आ गये। यज्ञ की बड़ी धूम-धाम से तैयारियाँ होने लगीं। अतिथियों के मन-बहलाव के लिए नाना प्रकार के आयोजन किये गये थे। कहीं पहलवानों के दंगल थे, कहीं राग-रंग की सभायें। किन्तु जो आनन्द लोगों को लव और कुश के मुँह से रामचन्द्र की चर्चा सुनने में आता था वह और किसी बात में न आता था। दोनों लड़के सुर मिलाकर इतने प्रिय भाव से यह काव्य गाते थे कि सुननेवाले मोहित हो जाते थे। चारों ओर उनकी वाह-वाह मची हुई थी। धीरे-धीरे रानियों को भी उनका गाना सुनने का शौक पैदा हुआ। एक आदमी दोनों ब्रह्मचारियों को रनिवास में ले गया। वहाँ तीनों बड़ी रानियाँ, उनकी तीनों बहुयें और बहुत-सी स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। रामचन्द्र भी उपस्थित थे। इन लड़कों के लम्बे-लम्बे केश, वन के स्वास्थ्यकर हवा से निखरा हुआ लाल रंग और सुन्दर मुख-मण्डल देखकर सब-के-सब दंग हो गये। दोनो की सूरत रामचन्द्र से बहुत मिलती थी। वही ऊंचा ललाट था, वही लंबी नाक, वही चौड़ा वक्ष। वन में ऐसे लड़के कहाँ से आ

गये, सबको यही आश्चर्य हो रहा था। कौशिल्या मन में सोच रही थीं कि रामचन्द्र के लड़के होते तो वह भी ऐसे ही होते। जब लड़कों ने कवित्त गाना प्रारम्भ किया, तो सबकी आँखों से आँसू बहने शुरू हो गये। लड़कों का सुर जितना प्यारा था, उतनी ही प्यारी और दिल को हिला देनेवाली कविता थी। गाना सुनने के बाद रामचन्द्र ने बहुत चाहा कि उन लड़कों को कुछ पुरस्कार दें, किन्तु उन्होंने लेना स्वीकार न किया। आखिर उन्होंने पूछा—तुम दोनों को गाना किसने सिखाया और तुम कहाँ रहते हो ?

लव ने कहा—हम लोग ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में रहते हैं। उन्होंने हमें गाना सिखाया है।

रामचन्द्र ने फिर पूछा—और यह कविता किसने बनाई ?

लव ने उत्तर दिया—ऋषि वाल्मीकि ने ही यह कविता भी बनाई है।

रामचन्द्र को उन दोनों लड़कों से इतना प्रेम हो गया था कि वह उसी समय ऋषि वाल्मीकि के पास गये और उनसे कहा—महाराज ! आपस एक प्रश्न करने आया हूँ, दया कीजियेगा।

ऋषि ने मुस्कराकर कहा—राजा रंक से प्रश्न करने आया है ? आश्चर्य है। कहिये।

रामचन्द्र ने कहा—मैं चाहता हूँ कि इन दोनों लड़कों को, जिन्होंने आपके रचे हुए पद सुनाये हैं, अपने पास रख लूँ। मेरे कोई लड़का नहीं है, यह तो आप जानते ही हैं। यह मेरे अँधेरे घर के दीपक होंगे। हैं तो किसी अच्छे वंश के लड़के ?

वाल्मीकि ने कहा—हाँ, बहुत उच्च वंश के हैं। ऐसा वंश भारतवर्ष में दूसरा नहीं है।

राम—तब तो और भी अच्छा है। मेरे बाद वही मेरे उत्तराधिकारी होंगे। उनके माता-पिता को इसमें कोई आपत्ति तो न होगी ?

वाल्मीकि—कह नहीं सकता। सम्भव है आपत्ति हो। पिता को तो लेशमात्र भी न होगी, किन्तु माता के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता। अपनी मर्यादा पर जान देनेवाली स्त्री है।

राम—यदि आप उस देवी को किसी प्रकार सम्मत कर सकें, तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी।

वाल्मीकि—चेष्टा करूँगा। मैंने ऐसी सज्जन, लज्जाशीला और सती स्त्री नहीं देखी। यद्यपि उसके पति ने उसे निरपराध, अकारण त्याग दिया है, किन्तु वह सदैव उसी पति की पूजा करती है।

रामचन्द्र की छाती धड़कने लगी। कहीं यह मेरी सीता ही न हो। आह! दैव, यह दोनों लड़के मेरे होते! तब तो भाग्य ही खुल जाता।

वाल्मीकि फिर बोले—बेटा, अब तो तुम समझ गये होगे कि मैं किस ओर संकेत कर रहा हूँ।

रामचन्द्र का चेहरा आनन्द से खिल गया। बोले—हाँ महाराज, समझ गया।

वाल्मीकि—जब से तुमने सीता को त्याग दिया है, वह मेरे ही आश्रम में है। मेरे आश्रम में आने के दो-तीन महीने के बाद यह लड़के पैदा हुए थे। यह तुम्हारे लड़के हैं। उनका चेहरा आप कह रहा है। क्या अब भी तुम सीता को घर न लाओगे? तुमने उसके साथ बड़ा अन्याय किया है। मैं उस देवी को आज पन्द्रह सालों से देख रहा हूँ। ऐसी पवित्र स्त्री संसार में कठिनाई से मिलेगी। तुम्हारे विरुद्ध कभी एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं सुना। तुम्हारी चर्चा सदैव आदर और प्रेम से करती है। उसकी दशा देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है। बहुत रुला चुके, अब उसे अपने घर लाओ। वह लक्ष्मी है।

रामचन्द्र बोले—मुनिजी! मुझे तो सीताजी पर किसी प्रकार का सन्देह कभी नहीं हुआ। मैं उनको अब भी पवित्र समझता हूँ। किन्तु अपनी प्रजा को क्या करूँ। उनकी ज़बान कैसे बन्द करूँ। रामचन्द्र की पत्नी को सन्देह से पवित्र होना चाहिये। यदि सीता मेरी प्रजा को अपने विषय में विश्वास दिला दें, तो वह अब भी मेरी रानी बन सकती हैं। यह मेरे लिए अत्यन्त हर्ष की बात होगी।

वाल्मीकि ने तुरन्त अपने दो चेलों को आदेश दिया कि जाकर सीताजी को साथ लाओ। रामचन्द्र ने उन्हें अपने पुष्पक-विमान पर

भेजा, जिससे वह शीघ्र लौट आयें। दोनों चेले दूसरे दिन सीताजी को लेकर आ पहुँचे। सारे नगर में यह समाचार फैल गया था कि सीताजी आ रही हैं। राज-भवन के सामने, यज्ञशाला के निकट लाखों आदमी एकत्रित थे। सीताजी के आने की ख़बर पाते ही रामचन्द्र भी भाइयों के साथ आ गये। एक क्षण में सीताजी भी आईं। वह बहुत दुबली हो गई थीं। एक लाल साड़ी के अलावा उनके शरीर पर और कोई आभूषण न था। किन्तु उनके पीले मुरझाये हुए चेहरे से प्रकाश की किरणें-सी निकल रही थीं। वह सिर झुकाये हुए महर्षि वाल्मीकि के पीछे-पीछे इस समूह के बीच में खड़ी हो गईं।

महर्षि एक कुश के आसन पर बैठ गये और बड़े दृढ़ भाव से बोले—देवी ! तेरे पति वह सामने बैठे हुए हैं। अयोध्या के लोग चारों ओर खड़े हैं। तू लज्जा और झिझक को छोड़कर अपने पवित्र और निर्मल होने का प्रमाण इन लोगों को दे और इनके मन से संदेह को दूर कर।

सीता का पीला चेहरा लाल हो गया। उन्होंने भीड़ को उड़ती हुई दृष्टि से देखा, फिर आकाश की ओर देखकर बोली—ईश्वर ! इस समय मुझे निरपराध सिद्ध करना तुम्हारी ही दया का काम है। तुम्हीं आदमियों के हृदयों से इस सन्देह को दूर कर सकते हो। मैं तुम्हीं से विनती करती हूँ। तुम सब के दिलों का हाल जानते हो। तुम अन्तर्यामी हो। यदि मैंने सदैव प्रकट और गुप्त में अपने पति की पूजा की हो, यदि मैंने अपने पति के साथ अपने कर्तव्य को पूर्ण किया हो, यदि मैं पवित्र और निष्कलंक हूँ, तो तुम इसी समय मुझे इस संसार से उठा लो। यही मेरी निर्मलता का प्रमाण होगा।

अन्तिम शब्द के मुँह से निकलते ही सीता भूमि पर गिर पड़ीं। रामचन्द्र घबराये हुए उनके पास गये, पर वहाँ अब क्या था। देवी की आत्मा ईश्वर के पास पहुँच चुकी थी। सीताजी निरंतर शोक में घुलते-घुलते योंही मृतप्राय हो रही थीं, इतने बड़े जनसमूह के सम्मुख अपनी पवित्रता का प्रमाण देना इतना बड़ा दुःख था, जो वह सहन न कर सकती थीं। चारों ओर कुहराम मच गया।

सब लोग फूट-फूटकर रोने लगे। सब की ज़बान पर यही शब्द थे—'यह सचमुच लक्ष्मी थी, फिर ऐसी स्त्री न पैदा होगी।' कौशिल्या, कैकेयी, सुमित्रा छाती पीटने लगीं और रामचन्द्र तो मूर्छित होकर गिर पड़े। जब बड़ी कठिनता से उन्हें चेतना आई तो रोते हुए बोले—मेरी लक्ष्मी, मेरी देवी, मेरी प्यारी सीता? जा, स्वर्ग की देवियाँ तेरे चरणों पर सिर झुकाने के लिए खड़ी हैं। यह संसार तेरे रहने के योग्य न था। मुझ-जैसा बलहीन पुरुष तेरा पति बनने के योग्य न था। मुझ पर दया कर, मुझे क्षमा कर। मैं भी शीघ्र ही तेरे पास आता हूँ। मेरी यही ईश्वर से प्रार्थना है कि यदि मैंने कभी किसी पराई स्त्री का स्वप्न में भी ध्यान न किया हो, यदि मैंने सदैव तुझे देवी की तरह हृदय में पूजा हो, यदि मेरे हृदय में कभी तेरी ओर से सन्देह न हुआ हो, तो पतिव्रता स्त्रियों में तेरा नाम सबसे बढ़कर हो। आनेवाली पीढ़ियाँ सदैव आदर से तेरे नाम की पूजा करें। भारत की देवियाँ सदैव तेरे यश के गीत गायें।

अश्वमेध-यज्ञ कुशल से समाप्त हुआ। रामचन्द्र भारतवर्ष के सबसे बड़े महाराजा मान लिये गये। दो योग्य, वीर और बुद्धिमान् पुत्र भी उनके थे। सारे देश में उनका कोई शत्रु न था। प्रजा उन पर जान देती थी। किसी बात की कमी न थी। किंतु उस दिन से उनके ओठों पर हँसी नहीं आई। शोकाकुल तो वह पहले भी रहा करते थे, अब जीवन उन्हें भार प्रतीत होने लगा। राजकाज में तनिक भी जी न लगता। बस यही जी चाहता कि किसी सुनसान जगह में जाकर ईश्वर को याद करें। शोक और खेद से बेचैन हृदय को ईश्वर के अतिरिक्त और कौन सान्त्वना दे सकता था।

लक्ष्मण की मृत्यु

किन्तु अभी रामचन्द्र की विपत्तियों का अन्त न हुआ था। उन पर एक बड़ी बिजली और गिरनेवाली थी। एक दिन एक साधु उनसे मिलने आया और बोला—मैं आपसे अकेले में कुछ कहना चाहता हूँ।

जब तक मैं बातें करता रहूँ, कोई दूसरा कमरे में न आने पाये। रामचन्द्र महात्माओं का बड़ा सम्मान करते थे। इस विचार से कि किसी साधारण द्वारपाल को द्वार पर बैठा दूँगा तो सम्भव है कि वह किसी बड़े धनीमानी को अन्दर आने से न रोक सके, उन्होंने लक्ष्मण को द्वार पर बैठा दिया और चेतावनी दे दी कि सावधान रहना, कोई अन्दर न आने पाये। यह कहकर रामचन्द्र उस साधु से कमरे में बातें करने लगे। संयोग से उसी समय दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे और रामचन्द्र से मिलने की इच्छा प्रकट की। लक्ष्मण ने कहा—अभी तो महाराज एक महात्मा से बातें कर रहे हैं। आप तनिक ठहर जायँ तो मैं मिला दूँगा। दुर्वासा अत्यन्त क्रोधी थे। क्रोध उनकी नाक पर रहता था। बोले—मुझे अवकाश नहीं है। मैं इसी समय रामचन्द्र से मिलूँगा। यदि तुम मुझे अन्दर जाने से...रोकोगे तो तुम्हें ऐसा शाप दे दूँगा कि तुम्हारे वंश का सत्यानाश हो जायगा।

बेचारे लक्ष्मण बड़ी दुविधा में पड़े। यदि दुर्वासा को अन्दर जाने देते हैं तो रामचन्द्र अप्रसन्न होते हैं, नहीं जाने देते तो भयानक शाप मिलता है। आख़िर उन्हें रामचन्द्र की अप्रसन्नता ही अधिक सरल प्रतीत हुई। दुर्वासा को अन्दर जाने की अनुमति दे दी। दुर्वासा अन्दर पहुँचे। उन्हें देखते ही वह साधु बहुत बिगड़ा और रामचन्द्र को सख्त-सुस्त कहता चला गया। दुर्वासा भी आवश्यक बातें करके चले गये। किन्तु रामचन्द्र को लक्ष्मण का यह कार्य बहुत बुरा मालूम हुआ। बाहर आते ही लक्ष्मण से पूछा—जब मैंने तुमसे आग्रहपूर्वक कह दिया था तो तुमने दुर्वासा को क्यों अन्दर जाने दिया? केवल इस भय से कि दुर्वासा तुम्हें शाप दे देते?

लक्ष्मण ने लज्जित होकर कहा—महाराज! मैं क्या करता। वह बड़ा भयानक शाप देने की धमकी दे रहे थे।

राम—तो तुमने एक साधु के शाप के सामने राजा की आज्ञा की चिन्ता नहीं की। सोचो, यह उचित था? मैं राजा पहले हूँ—भाई, पति, पुत्र या पिता पीछे। तुमने अपने बड़े भाई की इच्छा के विरुद्ध

नहीं काम किया है, बल्कि तुमने अपने राजा की आज्ञा तोड़ी है। इस दंड से तुम किसी प्रकार नहीं बच सकते। यदि तुम्हारे स्थान पर कोई द्वारपाल होता तो तुम समझते हो मैं उसे क्या दंड देता? मैं उस पर जुर्माना करता। लेकिन तुम इतने समझदार, उत्तर-दायित्व के ज्ञान से इतने पूर्ण हो, इसलिए वह अपराध और भी बड़ा हो गया है और उसका दंड भी बड़ा होना चाहिये। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि आज ही अयोध्या का राज्य छोड़कर निकल जाओ। न्याय सबके लिए एक है। वह पक्षपात नहीं जानता।

यह था रामचन्द्र की कर्तव्य-परायणता का उदाहरण! जिस निर्दयता से कर्तव्य के लिए अपनी प्राणों से प्रिय पत्नी को त्याग दिया, उसी निर्दयता से अपने प्राणों से प्यारे भाई को भी त्याग दिया। लक्ष्मण ने कोई आपत्ति नहीं की। आपत्ति के लिए स्थान ही न था। उसी समय बिना किसी से कुछ कहे-सुने राज-महल के बाहर चले गये और सरयू के किनारे पहुँचकर जान दे दी।

अन्त

रामचन्द्र को लक्ष्मण के मरने का समाचार मिला तो मानो सिर पर पहाड़ टूट पड़ा। संसार में सीताजी के बाद उन्हें सबसे अधिक प्रेम लक्ष्मण ही से था। लक्ष्मण उनके दाहने हाथ थे। कमर टूट गई। कुछ दिन तक तो उन्होंने ज्यों-त्यों करके राज्य किया; आख़िर एक दिन साम्राज्य बेटों को देकर आप तीनों भाइयों के साथ जंगल में ईश्वर की उपासना करने चले गये।

यह है रामचन्द्र के जीवन की संक्षिप्त कहानी। उनके जीवन का अर्थ केवल एक शब्द है, और उसका नाम है 'कर्तव्य'। उन्होंने सदैव कर्तव्य को प्रधान समझा। जीवन-भर कर्तव्य के रास्ते से जौ भर भी नहीं हटे। कर्तव्य के लिए चौदह वर्ष तक जंगलों में रहे, अपनी जान से प्यारी पत्नी को कर्तव्य पर बलिदान कर दिया और अन्त में अपने प्रियतम भाई लक्ष्मण से भी हाथ धोया। प्रेम, पक्षपात और शील को

कभी कर्तव्य के मार्ग में नहीं आने दिया। यह उनकी कर्तव्य-परायणता का प्रसाद है कि सारा भारत देश उनका नाम रटता है और उनके अस्तित्व को पवित्र समझता है। इसी कर्तव्य-परायणता ने उन्हें आदमियों के समूह से उठाकर देवताओं के समकक्ष बैठा दिया है। यहाँ तक कि आज निन्यानबे प्रतिशत हिन्दू उन्हें आराध्य और ईश्वर का अवतार समझते हैं।

लड़को! तुम भी कर्तव्य को प्रधान समझो। कर्तव्य से कभी मुँह न मोड़ो। यह रास्ता बड़ा कठिन है। कर्तव्य पूरा करने में तुम्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा; किन्तु कर्तव्य पूरा करने के बाद तुम्हें जो प्रसन्नता प्राप्त होगी, वही तुम्हारा पुरस्कार होगा।